संपादकीय

व्यक्ति के लक्ष्य की प्रधानता होती है। एक सैनिक हिंसा करता है तो उसमें राष्ट्र–रक्षा का लक्ष्य होता है और वहीं एक आतंकवादी हिंसा करता है तो वहाँ परपीड़ा, ईर्ष्या, द्वेष, विनाश का लक्ष्य होता है। इसी तरह एक वात्सल्यमयी माँ भी हिंसा करती है तो उसकी हिंसा में भी कल्याण छिपा रहता है। यही बात साहित्यसृजन में भी परिलक्षित होती है। आज लोगों की धारणा है कि ये युग विज्ञापन का है, विज्ञापन के सहारे अपनी अहंता का पोषण होता है परन्तु यह अवधारणा साहित्य को भी गुणहीन बना देती है। साहित्य के माध्यम से लोक–कल्याण की अवधारणा पुष्ट हो, यही साहित्यसृष्टा का वास्तविक लक्ष्य होना चाहिए। अनन्त काल से नारकीय यातनाओं में संतप्त प्राणियों को ब्रज के परम विरक्त संत श्रद्धेय श्रीरमेशबाबाजी की वाणी, भगवत रस की शीलता प्रदान कर सदा–सदा के लिये परम आनन्द का आह्लाद सुलभ कराने वाली है। उसी पतितपावनी वाणी को मानमंदिर गुरुकुल की साध्वी ब्रजबालाओं ने अपनी लेखनी का आभूषण बनाया है आशा है जो आप सभी को अवश्य ही दैवीय गुणों से अलंकृत, उज्ज्वलित व आह्लाद से संत्रप्त करेगी।

श्री राधाकान्त शास्त्री

(मानमन्दिर व्यवस्थापक)

अनुक्रमणिका

१.	शरणागति की परिपुष्टि	३
२.	रसीली ब्रज यात्रा	६
३.	दामोदर लीला	८
४.	प्रमाद से बचना ही वास्तविक भजन	१०
५.	साधकों के लिए सावधानियाँ	१२
६.	गुरुकुल बाल वर्ग	१३
७.	कृष्णप्रेममयी रानीरत्नावती	१६
८.	अनासक्ति ही आनन्दमूल	१८
९.	मानिनी के मान में मानद का दैन्य	२०
१०.	धाम की दुष्प्रवेश–महिमा	२१
११.	सर्वमंगल मूल भगवन्नाम	२४
१२.	जहाँ राम नहिं काम	२६
१३.	गोपाल की गौ–भक्ति	२८
१४.	DHAM NISHTHA (धाम निष्ठा)	३१

श्रीमानमन्दिर की बेवसाइट www. maanmandir. Org के द्वारा आप बाबाश्री के प्रात:कालीन सत्संग का ८.३० से ९.३० तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६.३० से ७.३० तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं। इस पत्रिका में दिए गए श्रीबाबामहाराज के सत्संग पर आधारित लेखों को यू. टूब. (You Tube) के द्वारा उपलब्ध सत्संग के माध्यम से लाभ उठाया जा सकता है।

आवरण तथा अन्य चित्रों के लिये गूगल एवं समस्त वैष्णववृन्दों का आभार।

संरक्षक –

श्री राधा मान बिहारी लाल

श्री मान मंदिर सेवा संस्थान अनेकानेक सत्कार्यों का संचालन प्रभु की प्रियता व लोक कल्याण की भावना से नि:शुल्क कर रहा है, उसी तरह 'मान मंदिर' पत्रिका का भी कोई शुल्क नहीं रखा गया है।

श्रद्धानुसार भावार्पित तुलसीदल भी ग्राह्य है अर्थात् स्वेच्छानुदान स्वीकृत है।

प्रकाशक –

श्रीराधाकान्त शास्त्री

श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान

गह्वर वन, बरसाना, मथुरा (उ. प्र.)

Website : www.maanmandir.org

E-mail : ms@maanmandir.org

Tel. : 9927338666, 9837679558, 9927194000

शरणागति की परिपुष्टि

(व्यासाचार्या साध्वी सुश्री मुरलिका जी शर्मा, मान मंदिर)

सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः॥

(भागवतमाहात्म्य, पद्मपुराण, उत्तरखण्ड-१/१)

सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम करते हैं हमलोग, उनकी शरणागति लेते हैं। भगवान् को क्यों प्रणाम करते हैं, मस्तक झुकाते हैं, दण्डवत करते हैं ? शरणागति के भाव से भगवान् को साष्टांग प्रणाम, नमन आदि किया जाता है, 'दण्डवत' का मतलब ही है शरणागति, यानि हम भगवान् के शरणागत हैं। तो यहाँ सच्चिदानन्द भगवान् श्रीकृष्ण की शरण ली गई। अब ये समझें कि शरणागति क्यों जरूरी है ? अगर सनातन धर्म के सभी ग्रन्थों का सार देखा जाए, सभी ग्रन्थों को एक रूप में देखा जाए तो वह हैं – श्रीमद्गीताजी। गीताजी का भी सार देखा जाए तो वह है **शरणागति धर्म .....मामेकं शरणं व्रज।** श्रीमद्भगवद्गीताजी की जिस शरणागति धर्म से समाप्ति हुई, उसी शरणागति धर्म से श्रीमद्भागवतजी का शुभारम्भ हुआ है। इसीलिये शौनकजी ने सूतजी महाराज से कहा भी है – **सूताख्याहि कथासारं मम कर्णरसायनम्।** "भगवन् ! हमने कथाएँ तो बहुत सुनी हैं लेकिन अब कथाओं का सार हमें सुनाओ ?" तो सम्पूर्ण सनातन धर्म के जितने वाङ्गमय ग्रन्थ हैं, उन सबका सार शरणागति धर्म है, जिसको भागवत-माहात्म्य का पहला श्लोक कह रहा है–

"सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः॥"

श्रीभगवान् सत्यस्वरूप, चैतन्यस्वरूप, आनन्दस्वरूप हैं। ये तीनों बातें केवल भगवान् में ही घटित होती हैं, संसार में नहीं होती हैं। संसार में कोई वस्तु-पदार्थ सत्य हो ही नहीं सकता है, क्योंकि सत्य वस्तु का लक्षण होता है– **"त्रिकालाबाधित्वं सत्यम्।"** जो कभी किसी काल में बाधित नहीं होता है, उसको सत्य कहा जाता है, जो भूत में भी था, वर्तमान में भी है और भविष्य में भी रहेगा, उसको सत्य कहा गया

"जो तिहुँ काल एक रस रहई।"

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - ३४१)

तीनों कालों में जिसकी एक रस सत्ता है। कबीरदासजी का एक पद है–

साधो ये मुर्दों का गाँव ।।
पीर मरैं पैगम्बर मरिहैं, मर गये जिंदा जोगी।
राजा मरिहैं परजा मरिहैं, मर गये वैद्य और रोगी।
चंदा मरिहैं सूरज मरिहैं, मरिहैं धरती आकास।
चौदह भुवन के चौधरी मरिहैं, इनहू की कहा आस।
नाम अनाम अनन्त रहत है, दूजा तत्त्व न होई।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, भटक मरो मत कोई॥

दूसरा कोई तत्त्व सत्य हो ही नहीं सकता। भगवद्-तत्त्व ही एकमात्र सत्य है, इसलिए उसको सत्यस्वरूप कहा गया है – **"सत्यं ज्ञान अनन्तं ब्रह्म॥"** भगवान् के कारण ही प्रकृति सत्य लगती है लेकिन सत्य होती नहीं है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा–

जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥

(रा.मा.बा.-११७)

'सत्यस्वरूपता केवल भगवान् में घटित होती है' अर्थात् संसार में यदि कोई सत्य तत्त्व है तो वह केवल भगवान् है।

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥

(रा.मा. अरण्य.- ३९)

भगवान्, भगवान् का नाम, भगवान् के जन, भगवान् की लीलायें, भगवान् का धाम ये सब सत्य तत्त्व है, इसलिए उनको सत्यस्वरूप कहा। भगवान् का दूसरा स्वरूप चिद्रूप (प्रकाश,चैतन्य रूप) है, उन भगवान् के प्रकाश (सत्ता) से ही ये सम्पूर्ण सृष्टि प्रकाशित हो रही है

सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

(रा.मा.बा.-११७)

'चिद् अंश जीव' जब तब तक 'चिद् घन भगवान्' की शरण ग्रहण नहीं करेंगे तब तक जड़ बने रहेंगे, माया से लिप्त रहेंगे क्योंकि ये अविद्या (माया) बिल्कुल जड़ है। जब तक जीव अविद्या (जड़ माया) से ग्रसित है तब तक मायिक विकार व त्रितापों से संतप्त रहेगा, चित्त में काम आदि के संस्कार आते रहेंगे, कामनाओं की पूर्ति होने पर अवश्य लोभ उत्पन्न होगा। जैसे- मन में कभी किसी वस्तु के प्रति प्रलोभन आ जाए तो इच्छा करती है कि इस वस्तु की चोरी कर लें, यद्यपि जानते हैं कि चोरी करना ठीक नहीं है लेकिन फिर भी हमारे राजसी, तामसी संस्कार इतने प्रबल होंगे कि जानते हुए भी बलात् हमसे चोरी करा देंगे, तो क्यों ? क्योंकि हमारा जो ज्ञान था, वह ज्ञान बाधित हो गया, वह ढक गया, लेकिन ईश्वर का जो ज्ञान है वह कभी बाधित नहीं होता है, यदि जीव का ज्ञान भी बाधित न हो तो जीव साक्षात् ईश्वर ही बन जाए लेकिन ईश्वर और जीव के ज्ञान में यही भेद है कि ईश्वर का ज्ञान कभी बाधित नहीं होता है और हमलोगों का जो ज्ञान है वह बाधित हो जाता है। हमारे जो रजोगुणी, तमोगुणी संस्कार हैं, वह हमारे ज्ञान को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। यदि ठाकुरजी की शरण ग्रहण कर ली जाए, तो इस जड़ता से, इस अज्ञान से उसी समय हमलोग मुक्त हो सकते हैं। क्योंकि ठाकुरजी ने श्रीमद्गीताजी में उपाय बताया –

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७/१४)

यदि कोई जीव मेरे प्रपन्न (मेरे शरणागत) हो जाए तो मैं उसी समय उसे जड़ता से, माया से, अज्ञान से, अन्धकार से मुक्त कर दूँगा। तो ठाकुरजी ज्ञान स्वरूप हैं, प्रकाश स्वरूप हैं ये है दूसरा निमित्त कारण। फिर तीसरा निमित्त कारण बताया कि ठाकुरजी आनन्दस्वरूप हैं। देखो संसार में कहीं भी आनन्द नहीं है, आनन्द है तो वह केवल श्रीठाकुरजी में है। सुख और आनन्द में बहुत बड़ा अन्तर है - सुख तो आएगा और चला जाएगा लेकिन आनन्द यदि एक बार आ गया तो वह कभी जा नहीं सकता। सांसारिक वैषैयिक वस्तुओं में सुख की प्राप्ति होती है और श्रीठाकुरजी के भजन में आनन्द की प्राप्ति होती है।

"जो आनन्द सिन्धु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥"

(रा.मा.बा.-१९७)

यदि उन श्रीठाकुरजी की कथा (वार्ता) का एक छोटे से छोटा अंश भी आस्वादन करने के लिए प्राप्त हो जाए तो निश्चित है कि हमारे जीवन में कभी दु:ख आ ही नहीं सकता है। दु:ख आता कब है ? जब हम ठाकुरजी की शरण में नहीं जाते हैं, यदि आनन्द स्वरूप भगवान् की शरण ग्रहण कर ली जाए तो दु:ख कभी निकट (पास) नहीं आएगा। इसलिए यदि हमलोग सदा-सर्वदा के लिए आनन्दमय बनना चाहते हैं, आनन्दस्वरूप होना चाहते हैं, तो आनन्दस्वरूप श्रीठाकुरजीकी शरण ग्रहण कर लें, इससे बढ़िया सरल मार्ग और कोई नहीं है। फिर आगे चौथा कारण बताते हैं कि 'विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे' श्रीठाकुरजी ही सृष्टि को बनाते हैं, पालन करते हैं, संहार करते हैं। जीव के अन्दर कोई सामर्थ्य नहीं है कि वह उत्पत्ति, पालन, संहार की क्रिया से मुक्त हो जाय अभी हमलोगों को मनुष्य शरीर मिला है, अब मरना तो है ही जन्म लिया है, 'मर जायेंगे फिर कहीं किसी अन्य योनि में जन्म लेंगे, फिर मरेंगे, फिर कहीं जन्म लेंगे, फिर मरेंगे' तो क्यों ? क्योंकि हमलोगों ने उत्पत्ति, पालन, संहार कर्ता श्रीठाकुरजी की शरण ग्रहण नहीं की है, यदि ठाकुरजी की शरण में चले जाएँ तो संसृति चक्र (जन्म-मरण) से सदा-सदा के लिए मुक्त हो जायेंगे। देखो एकबार श्रीठाकुरजी के होकर (शरण लेकर) जन्म ले लिया जाय तो दुबारा कभी जन्म ही नहीं होगा, एक बार ठाकुरजी के होकर मर लिया जाय तो दुबारा कभी मरण ही नहीं होगा अर्थात संसार में आसक्त जीवों की तरह जन्म-मरण नहीं होगा (भव-बन्धन से छूट जायेंगे)। बहुधा विमुखी लोग (बहुत से नास्तिक लोग) कह दिया करते हैं कि 'ठाकुरजी हैं' तुम्हारे पास इसका क्या प्रमाण है, क्या ठाकुरजी को तुमने देखा है, किसने देखा है ठाकुरजी को ?

अब समझो कि भगवान् हैं, इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह संसार है, यदि भगवान् न होते तो संसार क्या कोई आदमी बना सकता है ? एक सिर का बाल भी मनुष्य नहीं बना सकता तो संसार क्या बनाएगा और सृष्टि की व्यवस्था देखो कैसी व्यवस्थित है? नदियों का प्रवाह स्वत: (अनायास) समुद्र की ओर है, ऐसा क्या कोई जीव कर सकता है, क्या कोई जीव इतने बड़े-बड़े पहाड़ों को खड़ा कर सकता है, क्या कोई जीव समुद्र को बना सकता है? कदापि नहीं।

एकबार अकबर ने बीरबल से पूछा- "भैया ! कोई खुदा की खुदाई बताओ?" बीरबल बड़े विवेकी थे, उत्तर देने में समय लेते थे लेकिन बड़ा ही सटीक उत्तर देते थे। एक दिन बीरबल समुद्र के किनारे ले गये अकबर को सैर कराने के लिए, अब वहाँ बीरबल और अकबर दोनों समुद्र के किनारे से निकल रहे थे तो बीरबल ने संकेत करते हुए कहा कि देखो, हुजूर ! ये खुदा की खुदाई है, ये न मेरे बाप ने खोदा है, न आपके बाप ने खोदा है। क्यों? सृष्टि कोई जीव नहीं बना पायेगा। समुद्र कोई क्या खोदेगा? कहाँ तक खोदेगा? एक जन्म नहीं, हजार जन्म लेकर कोई आदमी खोदे तो समुद्र नहीं बना सकता। कोई क्या पहाड़ खड़े करेगा? इसलिए 'विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे' इस सृष्टि के उत्पत्तिकर्त्ता, पालनकर्त्ता, संहारकर्त्ता केवल श्रीठाकुरजी हैं। यदि जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होना चाहते हैं तो एकमात्र भगवद्-शरणागति ग्रहण कर ली जाए और कोई उपाय नहीं है। क्यों शरण ग्रहण करें ठाकुरजी की ? 'तापत्रयविनाशाय' एकबार ठाकुरजी की शरण में चले जाओगे तो सदा-सदा के लिए जिन त्रितापों से हमलोग संतप्त हो रहे हैं, उनसे उन्मुक्त हो जायेंगे। भगवदाश्रित जीव (भगवान् के शरणागत प्राणी) को कभी भी कोई ताप संतप्त नहीं कर सकता है

शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषा: ।
भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधन्ते हरिसंश्रयम् ॥

(भागवत ३/२२/३७)

लेकिन कभी-कभी मन में ऐसे सन्देह आ जाते हैं कि भैया, बड़े-बड़े भजनानन्दी महात्मा देखे, उन्हें भी तो रोग सताते हैं, ज्यादातर ऐसा देखा गया कि बहुत बड़े-बड़े महापुरुषों को भी असाध्य रोग हो जाते हैं। तो एक तरफ तो भागवतजी कह रहीं हैं कि जो जीव ठाकुरजी की शरण ले लेगा, उसे कभी त्रिताप नहीं सता सकता और दूसरी ओर हमलोगों को यह भी देखने के लिए मिलता है कि 'जो खूब भजन करते हैं' ऐसे संत-महज्जनों के ऊपर भी ऐसे-ऐसे कष्ट आते हैं जिनका कोई इलाज 'उपचार' नहीं। तो इसका क्या समन्वय है ? तो इसके विषय में कहा कि देखो, सामान्य लोगों की बात भिन्न है और महत् पुरुषों की बात अलग है। महापुरुषों (संत-महात्माओं) का तो अपना कुछ भी नहीं होता है, उनका अपना शरीर भी नहीं होता है, उनके ऊपर यदि असाध्य रोग आ जाएँ, बड़ी से बड़ी बीमारियाँ, कष्ट आ जाएँ तो भी उन कष्टों की उन्हें अनुभूति नहीं होती है, क्यों ? अनुभूति कब होगी ? यह मन ही सुख-दु:ख का कारण है

"नायं जनो मे सुख दु:ख हेतु: न देवतात्मा ग्रहकर्मकाल:।"

यदि हमारा मन ठाकुरजी में है, तो हमें कभी भी सुख-दु:ख की अनुभूति नहीं हो सकती है। अब महापुरुषों का मन सदा ठाकुरजी के चरणाम्बुजों में ही लगा रहता है, शरीर से, मन से उनकी अवस्थिति बहुत अतीत, परे होती है लग रहा है देखने में कि अरे भैया ! इतना कष्ट है, इतना भजन किया, ऐसी बीमारी ने घेर लिया लेकिन ऐसा होता नहीं है क्योंकि वे शारीरिक स्थिति से तो बहुत ऊपर उठे हुए होते हैं। भैया ! और तो क्या, हमने तो स्वयं देखा है, इससे बड़ा क्या

प्रमाण होगा, हमारे 'पूज्य गुरुदेव श्रीबाबा महाराज' यात्रा के मध्य में कुछ अस्वस्थ हो गये, लेकिन उनके मन में कोई प्रभाव नहीं पड़ा, एक रस-स्थिति में रहे। यात्रा के मध्य से जाना पड़ा उपचार के लिए और एकदम मूर्च्छित अवस्था लेकिन जब भी होश आता तो एक ही प्रश्न करते 'सत्संग' चल रहा है? उत्तर दिया कि 'सत्संग' चल रहा है। शारीरिक- दृष्टि से एकदम उपराम उनकी गति, शरीर में क्या कष्ट है, क्या रोग है, इससे मतलब नहीं। बीसों हजार यात्रियों के मध्य से गये और एक ही प्रश्न "सत्संग चल रहा है कि नहीं।" क्यों? उनका जो मन है केवल भक्तों के परमार्थ, केवल जीव के हित के लिए, केवल लोक कल्याण के लिए है। तो इसे हम कष्ट नहीं कहेंगे, वस्तुतः महापुरुषों का जन्म ही लोक-कल्याण के लिए होता है। सच्ची शरणागति महापुरुषों की ही होती है भगवान् के प्रति। हम जैसे संसारी लोग ऊपर से भले ही कह दें कि हम भगवत्प्रपन्न (ठाकुरजी के शरणागत) हैं लेकिन सही अंश में देखा जाय तो रंचमात्र भी हमलोगों की ठाकुरजी में शरणागति नहीं है, यदि सच्चे रूप से ठाकुरजी की शरण ले ली तो निश्चित है उसी क्षण तीनों प्रकार के तापों का उन्मूलन हो जाएगा। जब तक किसी भी प्रकार का ताप हमलोगों को घेरे हुए है तब तक समझ लो कि हम ठाकुरजी के शरणागत नहीं हैं। तो तीनों तापों (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक) से मुक्त होने का एक ही सरल-सहज-सरस उपाय है 'श्रीठाकुरजी की शरणागति।'

लेकिन देखो, हमारी कितनी शरणागति श्रीभगवान् में है, इसका एक बहुत बड़ा मापदण्ड उपनिषदों ने बताया, 'श्वेताश्वेतरोपनिषद्' में एक बहुत दिव्य मंत्र आता है

"यस्य देवे परा भक्ति यथा देवे तथा गुरौ .....॥"

जितने अंश में हमारी शरणागति (भक्ति) हमारे गुरुजनों (भक्तजनों) में होगी, उतनी ही शरणागति हमारी श्रीठाकुरजी में होगी, उससे ज्यादा नहीं हो सकती। इसलिए भगवद्-शरणागति की पुष्टि के लिए गुरुजनों की शरणागति की पुष्टि होना ज्यादा आवश्यक है, ठाकुरजी की शरण लेने से पूर्व गुरु-पादाश्रय लेना परमावश्यक है, पहले गुरुजनों के शरणागत होओ, तब कहीं जाकर ठाकुरजी के शरणागत हो पायेंगे। इसलिए भागवतजी में सबसे पहले शुकदेवजी महाराज को गुरु रूप में मानकर उनकी शरण ग्रहण की गई, जिससे इनमें शरणागति हमारी पुष्ट होगी, तो आगे श्रीठाकुरजी में हमारी शरणागति पुष्ट हो जाएगी। इसलिए सबसे पहले शुकदेवजीमहाराज को प्रणाम किया गया।

श्रीस्कन्दपुराणोक्त माहात्म्य में एक बहुत दिव्य बात लिखी है

"नन्दनन्दन रूपस्तु श्रीशुको भगवान् ऋषिः।"

श्रीशुकदेवजी महाराज को प्रणाम किया गया क्योंकि साक्षात् श्रीठाकुरजी ही शुकदेवजी बनकर आये हैं। शुकदेवजी कोई साधारण प्रवक्ता नहीं हैं, शुकदेवजी साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण-नन्दनन्दन-श्रीठाकुरजी हैं और वे प्रभु सर्वभूतहृदय हैं। शुकदेवजी महाराज अपनी इच्छा से १२ वर्ष तक माता के गर्भ में रहे। अब गर्भ में कितना कष्ट होता है, जिस स्थिति से हमलोग निकलना चाहते हैं, उस स्थिति में शुकदेवजी स्वेच्छा से रहे। यहाँ तक कि गर्भ से बाहर निकलने के लिए स्वयं श्रीबद्रीनारायण भगवान् ने कहा कि हे शुक! अब तुम बाहर निकल आओ। तो ठाकुरजी को भी मना कर दिया कि मैं बाहर नहीं आना चाहता।

साधकों को सबसे पहली चीज ये देखना चाहिए कि जहाँ भजन अच्छा बन रहा हो, वही रहने योग्य स्थान है, वह चाहे गर्भ है, चाहे गर्भ से बाहर है। तभी तो भागवतजी में कहा

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम्॥

(भागवत ५/१९/२४)

जहाँ संत-महात्मा नहीं हैं, जहाँ ठाकुरजी की चर्चा नहीं है, जहाँ ठाकुरजी से सम्बन्धित उत्सव-महोत्सव नहीं हैं, वह चाहे ब्रह्मलोक हो, इन्द्रलोक हो, वहाँ भी मत रहो। जहाँ भगवद्-भागवत चर्चा है, वह गर्भ ही क्यों न हो? अब देखो, शुकदेव जी महाराज गर्भ से भी बाहर निकलना नहीं चाहते हैं, गर्भ में ही रहना अच्छा लग रहा है। व्यास जी ने कहा- "पुत्र ! बाहर आओ।" शुक बोले- "नहीं आऊँगा।" व्यास जी ने प्रार्थना किया बद्रीनारायण भगवान् से "प्रभु ! आप ही कहिए बालक को बाहर आने के लिए। प्रभु ने कहा- "शुक ! बाहर आ जाओ।" शुकदेव जी ने निषेध कर दिया "नहीं आऊँगा।" क्यों? भय है। किस बात का भय? माया का भय है।

भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी॥

(रा.मा. किष्कि. -१४)

सारा संसार माया से व्याप्त है, मैं बाहर कहाँ आऊँ? ये माया मुझे घेर लेगी, मुझे ग्रस्त कर लेगी, मैं बाहर नहीं आऊँगा । लेकिन श्रीभगवान् ने कहा- "शुक! तुम्हारी वाणी से, तुम्हारे मुख से निकले हुए ग्रन्थ का आस्वादन करने वालों की ही जब माया दूर हो जाएगी तो तुम्हें माया कहाँ से त्रस्त करेगी, बाहर आ जाओ।" तो शुकदेव प्रभु भगवदाज्ञा से बाहर आये, अभिजित मुहूर्त में प्रभु ने अवतार ग्रहण किया और जैसे ही जन्म लिया तो जन्म लेते ही 'अभी माता-पिता ने अपने बालक को ढंग से देखा भी नहीं, नालोच्छेदन भी नहीं हुआ' शुक प्रभु दौड़ने लगे! माता के गर्भ से निकलते ही घर छोड़कर भाग दिए, सर्वभूतहृदय मुनि हैं। क्योंकि देखो, ठाकुरजी भी सर्वभूत हृदय हैं, प्राणीमात्र के हृदय में हैं और शुकदेवजी महाराज भी प्राणीमात्र के हृदय में होने के कारण 'सर्वभूतहृदय' उनको कहा गया। कई पुराणों में तो ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि जब शुकदेव प्रभु दौड़े हैं तो जंगल के शुक, पिक, मयूर आदि भी बड़ी जोर से क्रंदन करने लगे (बहुत जोर से रुदन करने लगे) क्यों? क्योंकि वे सबकी आत्मा हैं, जैसे ही शुक प्रभु दौड़ने लगे तो उन सभी को ऐसा लगा मानो उनके प्राण भी शुकदेवजी के साथ जा रहे हों, ऐसा करुण-क्रंदन किया और व्यास जी महाराज तो 'आजुहाव' हे शुक! हे शुक! पुत्र! पुत्र! कहकर ऐसा करुण-क्रंदन करने लगे। क्यों रोये? तो बोले - व्यासजी पुत्रासक्ति के कारण नहीं रोये हैं, यह कोई सामान्य (साधारण) बालक नहीं है।तो शुकदेव प्रभु कौन हैं? बोले-यह तो साक्षात् श्रीठाकुरजी हैं, ठाकुर जी से वियोग हुआ तो व्यासजी सहज (अपने-आप) रोने लगे।

रसीली ब्रज यात्रा

(शास्त्रों में ब्रजपरिक्रमा का अत्यधिक महत्त्व है। स्वयं नंदनंदन ने ब्रह्मा जी से कहा– ''ब्रज परिकम्मा करहु देह को पाप नसावहु'' (सूरसागर) (भा. १०/१४/४१ त्रिः परिक्रम्य) मान मंदिर द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ ''रसीली ब्रज यात्रा'' भाग–१ के माध्यम से आइये हम लोग ब्रज यात्रा करते हैं। इस क्रम में पहला पड़ाव है–

बरसाना

श्री गहवर वन

मयूर कुटी और मान मन्दिर के बीच का भाग गहवर वन है, जो युगल सरकार का नित्य विहार स्थल है।

ततो गहवर वन प्रार्थना मन्त्र –

गहवराख्याय रम्याय कृष्णलीलाविधायिने ।
गोपीरमणसौख्याय वनाय च नमो नमः ॥

(वृहन्नारदीये)

"सुरम्य गहवर वन", श्रीकृष्ण का लीला स्थान,गोपियों के सहित रमण करने वाले श्रीकृष्ण को आनन्द प्रदान करने के लिये ही जो विराजमान है,आपको प्रणाम है ।

ततो श्री गहवर वन प्रमाण मन्त्र –

यत्र गहवरकं नाम वनं द्वन्द्वमनोहरम् ।
नित्यकेलि विलासेन निर्मितं राधया स्वयम्॥

(वृषभानुपुरशतक)

अर्थात् – "जिस बरसाने में गहवर वन है, जिसे श्रीराधा ने स्वयं अपने नित्य केलि विलासों से बनाया है।" इसीलिए यह स्थल नित्य विहार का माना गया है

'नित्य विहार' का तात्पर्य "जहाँ एक क्षण के लिए भी वियोग नहीं है।" स्वकीया एवं परकीया दोनों से यह भिन्न उपासना पद्धति है। स्वकीया में पितृगृह गमन से वियोग का अनुभव होता है और परकीया में तो संयोग का अवसर भी कम ही मिलता है और वह भी अनेक बाधाओं के बाद। वहाँ बाधाओं को प्रेम की कसौटी या प्रेम की तीव्रता का मापदण्ड माना जाता है। स्वकीया वाले श्रीराधा के मायिक व कल्पित पति के नाम से ही अरुचि रखते हैं। वे परकीयत्व का किंचित् मात्र संस्कार भी अपनी अनन्यतामें स्वीकार नहीं करते, इसीलिए श्री गहवर वन में रसिकों ने वियोग शून्य नित्य मिलन की उपासना स्वानुभव से लिखी है। जिनमें युगल इतने सुकुमार हैं कि एक क्षण का भी वियोग असह्य है किन्तु वियोग के बिना संयोग पुष्ट नहीं होता है। यह भी एक सत्य है। इसलिए यहाँ अति सूक्ष्म विरह भी गाया गया है। वह विरह,मिलन की अवस्था में भी निरन्तर पिपासा बढ़ाता रहता है ।

यही प्रेम वैचित्री है ।

योगेवियुक्तवन्मानि ललितैकाश्रयं स्वयम् ।
करुणाशक्तिसम्पूर्णं गौरं नीलं च गह्वरे॥

(वृषभानु पुर शतक)

वियोज्यते वियुक्तं वा न कदापि वियोक्ष्यते ।
क्षणार्द्धसत्कोटियुगं युगलं तत्र गहवरे॥

(वृषभानुपुरशतक)

अर्थात्– "जिस गहवर वन में,कोटि कोटि युग भी,आधे क्षण के समान, नित्य संयोग में,प्रेम पिपासा में व्यतीत हो जाते हैं। जैसे श्रीमद् राधासुधानिधि,जो श्रीराधा की अनेक लीलाओं का सागर है, जिसमें उनकी विविध छवियाँ स्वकीया–परकीया की प्रस्तुत की गयी हैं। यद्यपि साम्प्रदायिक आग्रह से सम्पूर्ण ग्रन्थ "श्रीराधा सुधा निधि" को अपनी पद्धति में सीमित करने का प्रयास किया गया है किन्तु संतजन सभी पद्धतियों का सम्मान करके अपने आस्वादन में लग जाते हैं। खण्डन का बात–बतंगड़, शुद्ध नीरस कलुषित लोग ही किया करते हैं ।

वहाँ पर भी गहवर वन की मिलन पद्धति की छवि का वर्णन आता है (रा.सु.नि.२५३ श्लोक) अर्थात्– वियोग तो दूर रहा, वियोगाभास से ही कोटि–कोटि प्रलयाग्नि की ज्वाला,युगल को बाहर व भीतर अनुभव होने लग जाती है। ऐसा गाढ़ प्रेम है। जहाँ अति सूक्ष्म विरह की कल्पना भी इतनी तीव्रतम पिपासा जगाती रहती है ।इसीलिए अंक में स्थित,मिलित अवस्था में विरहानुभूति होने लग जाती है (रा.सु.नि.१४६,१२६)। इसलिए वृन्दारण्य से तात्पर्य,पंच योजनात्मक वृंदावन से है,जिसमें श्री गहवर वन भी आता है, इस विषय को वृंदावन में संक्षेप में कहा जायेगा। दोनों पक्ष के टीकाकारों ने (रा.सु.नि.७८)ईशता, ईशानि, शचि आदि की व्याख्या में लक्ष्मी, पार्वती, इन्द्राणी आदि को ग्रहण किया है, कहीं इन सबको श्रीजी का अंश, और कहीं इनसे स्वतंत्र स्वामिनी के रूप में अर्थ किया है। इस प्रकार श्री राधिका से ये सब सम्बद्धा होती हैं।

चाहे अंश रूप से या आधीन रूप से,अंश–अंशिनी में कोई भेद नहीं है। जब हम इनको राधिकांश रूप में मान्यता देते हैं तो फिर राधा लीला में उनके विभिन्न स्वरूपों से ही द्वेष क्यों है? जबकि श्रीमद्भागवत में डंके की चोट पर कहा गया है। सर्वाःशरत् काव्यकथारसाश्रयाः (भा.१०/३३/२६)अर्थात्–"युगल सरकार ने सभी रसों का आस्वादन किया। वहाँ स्वकीया (अपनी विवाहिता)या परकीया (दूसरे की विवाहिता)या नित्यदाम्पत्य (नित्यवधू) रस हो।"

बरसाने के वन–उपवन के सरोवरों में निशंक भाव से श्रीजी क्रीड़ा करती हैं। वन के भीतर श्रीराधा सरोवर,उनकी 'बाल व श्रृंगार लीला' का एक स्थल है

ततो श्री राधासरस्नानाचमन मन्त्र –

देव कृतार्थरुपायै श्री राधासरसे नमः ।
त्रैलोक्यपदमोक्षाय रम्यतीर्थाय ते नमः॥

(ब्र.भ.वि)

जिस सरोवर पर यात्रा संकल्प लेती है,उसका नाम 'राधा सरोवर' या 'राधासर' है। यहाँ श्रीराधा रानी अपनी सखियों के साथ जल क्रीड़ा करती थीं, जिससे इसका नाम 'राधा सरोवर' हो गया। इस सरोवर के प्रार्थना मन्त्र का भाव है कि "बड़े–बड़े देवता भी राधा सरोवर आने परकृतार्थ हो जाते हैं ।यह त्रिलोकी को भी मुक्त करने की शक्ति रखता है ।ऐसे रमणीय तीर्थ को हम नमस्कार करते हैं ।"

ततो श्री रास मण्डल प्रार्थना मन्त्र रू–

विलासरासक्रीडाय कृष्णाय रमणाय च ।
दशवर्ष स्वरूपाय नमो भानुपुरे हरे॥

(ब्र.भ.वि)

अर्थात् –"रास विलास क्रीड़ा के लिये दस वर्षीय,वृषभानु पुर में विराजमान 'श्रीकृष्ण'को प्रणाम है ।"

बाल व श्रृंगार लीलाएँ

श्रीराधा अति मिठ बोलनी, पुर उपबन बन खेलन डोलनि।
कबहूँ सखिन संग लै भीर, खेलन जांइ सरोवर तीर॥
अति सुन्दर जु मृत्तिका लाइ, सुहथ खिलौना रचती बनाइ।
सदन बनावैं न्यारे न्यारे, तिन में धरैं खिलौना प्यारे॥
ग्रह के सब कारज करैं, खेल मगन कौतिक विस्तरैं।
सब कौं सब जु बांइनौं देंहिं, सब पै तें सब सादर लेंहि॥
टोलनि टोलनि मंगल गावैं, कुंवरिहिं नाना खेल खिलावैं।
कबहूं झूलहिं गहि- गहि तरवर, कबहूँ केलि करैं जल सरवर॥
कबहूं लै जु मीन गति तरैं, जल में महा कुलाहल करैं।
कबहूं जल मुख पर लै सीचौं, कबहूं पाछें रहि ग मीचौं॥
कबहूँ तोरि जु कमल बगेलैं, तकि तकि तन मारैं यौं खेलैं।
बुडकी लैं जल हीं जलधावैं, भरैं चुहुंटियां अंक लगावैं॥
पुनि जल पैठैं उछरैं ऐसें, मीन करत कौतूहल जैसें।
तन अंगोछि पहिरैं जु निचोल, मिलैं जु अपने अपने टोल॥

(ब्र.प्रे.सा.नवम लहरी)

अथवा

कबहूं राधा चम्पक बरनी ।
गहवर झूलैं कौतिक करनी॥

(ब्र.प्रे.सा.दशम लहरी, चौ ७२)

श्री गहवर वन की लीलाओं का गान सभी रसिकों ने किया है। जैसे

प्यारी जु आगैं चलि आगे चलि गहवर वन भीतर

(केलिमाल ४६)

देखि सखी राधा पिय केलि ।
ये दोउ खोरि, खिरक, गिरि, गहवर
विहरत कुंवर कंठ भुज मेलि ॥

(श्री हित चतुरासी ४९)

भूलि परी गहवर वन में जहाँ सखी न कोउ साथ ।
सोहिलो सुख गहर गहवर भरयौ भाव अनन्त ।

(श्री महावाणी सहेली, उत्साह सुख ४१७६४ तथा सोहिलो ३९में)

सदा वृंदावन सबकी आदि ।
गिरि गहवर वीथीरत रन में, कालिन्दी सलिलादि ॥

(श्री व्यास वाणी.वृं.म.पद सं.४२)

एक दिन राधिका रानी गहवरवन में खेल रहीं थीं और श्रीकृष्ण उनको ढूँढ़ते–ढूँढ़ते नन्दगाँव से चले ।

जब यहाँ पहुँचते हैं तो ललिता जी कहती हैं "हे नन्द लाल ! तुम यहाँ कैसे आये?"

श्याम सुन्दर कहते हैं "ललिता जी ! हम श्रीराधा रानी के दर्शन के लिये आये हैं।" ललिता जी कहती हैं "अभी तुमको दर्शन तो नहीं मिलेंगे क्योंकि किशोरी जी अभी महल से चली नहीं हैं।" जबकि वो चल चुकी थीं। ये हैं लाड़ली जी की सखियाँ,ये टेढ़े ठाकुरसे टेढ़ेपन से ही बात किया करती हैं ।

क्रमशः....

दामोदर लीला

अन्तर्राष्ट्रीय कथा व्यास डॉ. श्री रामजीलाल शास्त्री
(मान मन्दिर, बरसाना)

यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च।
दधिनिर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत॥

(भा. १०/०९/०२)

श्रीकृष्ण ने जो–जो बाल लीलाएँ की हैं उन लीलाओं का स्मरण करती हुई यशोदा मैया बड़ी तन्मय होकर दही बिलोते हुए बड़े चाव से गाती जा रहीं हैं। इसी बीच में बालकृष्ण आकर मथानी को पकड़ लेते हैं और दूधू–दूधू कहकर मैया की गोद में चढ़ने लगते हैं। मैया दही बिलोना बंद करके अपने लाड़ले लाल को स्तनपान कराने लग जाती हैं। कन्हैया स्तनपान करते जा रहें हैं परन्तु उन्हें तृप्ति नहीं हो रही है। तृप्ति कैसे हो ? मैया के इस दूध को पीने के लिए ही तो श्रीकृष्ण आधी रात को मथुरा से गोकुल में आये थे। मैया के स्तन का दूध पीते–पीते कृष्ण बोले– "मैया ! तुझे सबसे प्यारी चीज क्या लगती है ?" मैया ने कन्हैया के मुख को चूमते हुए कहा– "बेटा ! सबसे प्यारा तो तू ही लगता है।" यह सुनकर कृष्ण बड़े मगन हो गए और फिर दूध पीने लग गए। अचानक क्या हुआ, रसोई में दूध उफनने लगा। मैया बालकृष्ण को गोद से उतारकर उफनते दूध को उतारने चली गयीं। कृष्ण अभी अतृप्त ही थे। दूध को उतारकर मैया रसोई के काम में लग गयी, कुछ देर हो गयी। इधर श्रीकृष्ण सोच रहे हैं कि अभी तो मैया कह रही थी कि मुझे संसार में सबसे प्यारा तू ही लगता है लेकिन अब उसे चूल्हे पर रखा दूध मुझसे भी प्यारा हो गया। श्रीकृष्ण ने रोष में आकर एक पत्थर का लोढ़ा लिया और दूध दही के माट फोड़ दिए। दूध दही बहने लगा। श्रीकृष्ण ने इशारे में बंदरों को बुला लिया और उनको पंगत कराने लगे। बड़े आनंद से पंगत होने लगी, जयकारे का तो कोई काम ही नहीं था क्योंकि नंबर दो का माल गटका रहे हैं। इधर श्रीकृष्ण भी उलूखल को दूर ले जाकर उल्टा करके उस पर बैठ गए और देख रहे हैं कि कहीं मैया तो नहीं आ रही है? कुछ देर बाद मैया आई तो उसने देखा कि बर्तन फूटे पड़े हैं लेकिन कन्हैया वहाँ नहीं है। वह समझ गयी कि यह उसी ऊधमी का काम है, यह देख कर वह हँस गयी –

भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्म
तज्जहास तं चापि न तत्र पश्यती॥

(भा.१०/०९/०७)

मैया ने विचार किया कि गोपियाँ कान्हा की शिकायत करने आती थीं परन्तु मैं मानती नहीं थी। जब यह अपने घर में ही नहीं चूकता है तो बाहर तो अवश्य मनमाने ढंग से चंचलता करता होगा। आज मैं इसे जरूर दण्ड दूँगी नहीं तो यह बड़ा होकर और ढीठ हो जाएगा। यह सोचकर मैया ने हाथ में डंडी उठाई कि आज इसकी पिटाई करनी है –

तामात्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वरस्ततोऽवरुह्यापससार भीतवत् ।

(भा.१०/९/०९)

मैया के हाथ में डंडी देखकर श्रीकृष्ण उलूखल से उतरकर डरते हुए भाग गए, कैसी विचित्र लीला है ? जिन कृष्ण से काल भी डरता है, वे आज मैया की डंडी से भयभीत होकर भाग रहे हैं। श्रीकृष्ण ने नाटक पूरा किया, आँखें बंद कर लीं, काजल बह गया और रोने के कारण आँखें लाल हो गयीं। मैया ने समझा कि लाला डर गया है, कहीं दहशत न हो जाए इसलिए मैया ने डंडी को फेंक दिया परन्तु सोचा कि इसे कुछ सजा तो जरूर देनी है। आज इसे रस्सी से बाँधूंगी। मैया कृष्ण के पराक्रम को नहीं जानती थी –

त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला ।
इयेष किल तं बद्धुं दाम्नातद्वीर्यकोविदा॥

(भा.१०/९/१२)

मैया ने डंडी फेक दी तो कृष्ण प्रसन्न हो गए कि अब पिटने से बच गए। मैया ने कृष्ण को बाँधने के लिए उनके उदर में रस्सी लपेट दी परन्तु जब गाँठ लगाने को हुयी तो रस्सी दो अंगुल छोटी पड़ गई। गोपियों ने और रस्सियाँ लाकर दीं परन्तु जब गाँठ लगाने को हों तो रस्सी फिर दो अंगुल छोटी पड़ जाए। गोपियाँ बोली– मैया ! इसके ललाट में बँधना नहीं लिखा है, तू इसे छोड़ दे लेकिन मैया ने जिद कर ली कि मैं इसे बाँध के रहूँगी। जो सारे संसार को बंधन से मुक्त करने वाला है भला उसे कोई क्या बाँध सकता है ? मैया के जूड़े से पुष्प झड़ने लगे और पसीने से शरीर लथपथ

हो गया।

दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने॥

(भा.१०/९/१८)

मैया के श्रम को देखकर श्रीकृष्ण स्वयं बंधन में आ गए, उनके उदर में रस्सी पड़ गयी। अब उनका नया नाम हो गया 'दामोदर'। (दाम=रस्सी), रस्सी है उदर में जिसके ऐसे 'दामोदर भगवान्'। बोलो –दामोदर भगवान् की जय हो।

यह लीला तो छोटी–सी है, कृष्ण ने माट–मटके फोड़ दिए और मैया ने रस्सी से बाँध दिया तथा दामोदर नाम पड़ गया परन्तु यह लीला है बड़ी रहस्य पूर्ण।

प्रारंभ से ही देखिये – जब कृष्ण ने मैया से कहा – मैया! तुम्हे सबसे प्रिय कौन–सी चीज लगती है? मैया ने कहा– बेटा! सबसे प्यारा तो तू ही है। मैया जब कृष्ण को गोद में से उतारकर उफनते हुए दूध को उतारने चली गई तो कृष्ण रुष्ट हो गए और सोचने लगे कि दूध मुझसे भी अधिक प्यारा हो गया। उसका कारण दिया गया है कि दूध का जलना पूत के लिए मंगलकारी नहीं माना जाता है, इसलिए कोई माता दूध को जलता नहीं देख सकती। दूसरी बात वह दूध पद्मगन्धा आदि विशेष जाति की गायों का था, जिसे कृष्ण पिया करते थे, इसलिए मैया उस दूध को उतारने गयी थी। कृष्ण ने माट–मटके फोड़ दिए तो क्या मैया के ऊपर रोष था? नहीं। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने अपनी सुबोधिनी नाम की टीका में एक भाव दिया है कि –**"तद्भाण्डेदैत्यमाविशत् तद वधार्थमेवं कृतवान्"** अर्थात् उन बर्तनों में वायु रूप से एक दैत्य प्रवेश कर गया था। श्रीकृष्ण ने सोचा कि अगर ये अपने असली स्वरुप में आ गया तो मेरी मैया डर जायेगी। अतः उसका वध करने के लिए श्रीकृष्ण ने माट– मटकों को फोड़ा था। जब मैया यशोदा श्रीकृष्ण को रस्सी से बाँधने लगीं तो रस्सी दो अंगुल छोटी पड़ गयी। दो ही अंगुल क्यों कम हुयी? तीन गुण होते हैं – सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। भगवान् सतोगुण के अधिक नजदीक हैं। अतः रजोगुण और तमोगुण आदि दो गुणों का त्याग करने के भाव से रस्सी दो अंगुल कम पड़ी। तमोगुण और रजोगुण से प्रभु को बंधन में नहीं बाँधा जा सकता। दूसरा कारण – जीव और ईश्वर के बीच दो अंगुल की दूरी है। एक अंगुल की दूरी जीव पक्ष में है कि वह ईश्वर से मिलने के लिए प्रयत्न नहीं करता। जब वह प्रयत्न करता है तो एक अंगुल की दूरी हो जाती है। दूसरी अंगुल की दूरी है कृपा पक्ष की। आपने प्रयत्न किया और कृपा नहीं हुयी तो भी एक अंगुल की दूरी बनी रहेगी। इसे आप उदाहरण से समझिये। जैसे– आप किसी अधिकारी से मिलने गए, प्रयत्न तो आपने किया, एक अंगुल की दूरी कम हो गयी। यदि अधिकारी की इच्छा नहीं हुयी या उनकी कृपा नहीं हुई तो दूसरे अंगुल की दूरी बनी रहेगी और मुलाकात नहीं होगी। इधर मिलने का प्रयत्न किया जाए तो एक अंगुल की दूरी कम हुई और उधर कृपा हो जाए तो दो अंगुल की दूरी कम हो गयी और मिलन हो जाएगा। मैया के पक्ष में–**दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने॥**

(भा.१०/०९/१८)

मैया के परिश्रम को देखकर कृपा करके श्रीकृष्ण बंधन में आ गये। दोनों अंगुल की दूरी दूर हो गयी। सारे विश्व को बंधन मुक्त करने वाले कृष्ण को आज यशोदा मैया ने बाँध दिया। यह सौभाग्य ब्रह्मा, शिव यहाँ तक कि लक्ष्मीजी जो हमेशा प्रभु की चरण सेवा में रहती हैं उन्हें भी नहीं मिल पाया, जो कि परम सौभाग्यशालिनी मैया यशोदा को प्राप्त हुआ।

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात्॥
नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह॥

(भागवत १०/०९/२०,२१)

बड़े–बड़े ज्ञानी आत्माराम ,आप्तकाम, सिद्धयोगी, ऋषि मुनियों को भी यह ब्रजरस, ब्रजरज प्राप्त नहीं होती है जैसा कि एकमात्र विशुद्ध भक्ति से सहज में मिल जाती है।

रज राखै रज जात है, रज खोये रज पाए।

जितना रजोगुण को, अपनी सत्ता को बनाये रखोगे तो यह ब्रजरज का रस चला जाएगा और जितना रजोगुण का अर्थात अपने अहम् का त्याग करोगे, उतना ही यह ब्रजरस हृदय में प्रस्फुटित होगा। ❑❑❑

प्रमाद से बचना ही वास्तविक भजन

(श्रीबाबामहाराज के प्रात:कालीन सत्संग (१२ जून २०१२) से संग्रहीत)
संकलन एवं लेखन- श्री राधिकेशजी शर्मा (श्रीमद्भागवत प्रवक्ता, मान मन्दिर)

भजन क्या है ? इसका उल्लेख श्रीभगवान् ने गीताजी में किया है -

सङ्कल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥
शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥
यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ६/२४,२५,२६)

कुछ लोग कहते हैं कि हमने इतनी देर पाठ किया, जप किया, इतनी देर स्तुति किया लेकिन वह भजन नहीं है, वह तो नियम पूर्ति है। वास्तविक भजन वह है जो २४ घंटे चलता है। गीता (६/२६)में भगवान् कहते हैं कि २४ घंटे मन पर नजर रखो। मन का स्वभाव है बार-बार बाहर निकलने का, क्योंकि ये बहुत ज्यादा चंचल है, सदा चलता रहता है, बैठ नहीं सकता, कभी स्थिर नहीं रहता। सो जाओ तो मन सपने में भी स्थिर नहीं होता। अपने मन को देखो, बाहर कहाँ जा रहा है? लड्डु-पेड़ा में या भोगों में अथवा किसी की याद में। मन विषयों में जाता है या जहाँ उसका लगाव (आसक्ति, राग) होता है, वहाँ चला जाता है। जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँ जाने से इसे रोको, बस यही भजन है। इस प्रकार मन को अपने वश में ले आओ तब उसकी चंचलता (अस्थिरता) मिटेगी। जो लोग सोचते हैं कि हमने १ घंटा पाठ कर लिया, बस भजन हो गया लेकिन वह भजन नहीं है। एक घंटा पाठ किया फिर गप्प मारने लगे, यह भजन नहीं है। एक क्षण भी मन को इधर -उधर नहीं जाने देना चाहिए, न अपना और न दूसरे का। हमारा समाज तेजहीन क्यों है ? इसका कारण है कि लोग थोड़ी देर नियम करते हैं फिर चिलम, भंडारा और गपशप आदि में लग जाते हैं, ये भजन नहीं है। केवल कपड़े बदल लिए, साधु-वैष्णव वेष धारण कर लिया और मन अन्तर्मुख नहीं है, तो इससे आत्म कल्याण नहीं होगा। इसलिए श्रीकबीरदासजी महाराज ने कहा है

मन न रंगाये रंगाये जोगी कपड़ा।
कनवा फड़ैले बाला लटकैले, दढ़िया बढ़ैले जोगी होइ गये बकरा॥
मथवा मुड़ैले कपड़ा रंगैले, गीता बांच जोगी होइ गैले लफड़ा।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, जम तर बचवा बधिक जैहे पकड़ा॥

जोगी बन गए, कपड़ा रंगा लिया और मन नहीं रंगाया तो वह वास्तविक साधु नहीं है। कपड़ा रंगा लिया और दाढ़ी बढ़ाकर बकरा बन गए। साधु लोग या तो सिर घुटा लेते हैं या जटा रख लेते हैं लेकिन मन नहीं रंगाते हैं (मन से भगवान् का सतत् स्मरण नहीं करते हैं)। कभी ऊँचे सिंहासन पर बैठकर गीता पर प्रवचन देते हैं लेकिन बहुत भाषण देने वाले बहिर्मुखी को योगी नहीं कहते हैं क्योंकि उसका मन अभी सच्चे साधन में नहीं रंगा है। मन २४ घंटे संसार में रहता है, इसे वहाँ से हटाकर भगवान् में लगाओ। न तो स्वयं प्रमाद करो और न दूसरे को करने दो। 'प्रमाद' जीव को नष्ट कर देता है। किसी भी बच्चे पर यदि दया करते हो तो उसे प्यार से सेवा में लगाओ अथवा कीर्तन कराओ। इस सन्दर्भ में मानमंदिर की साध्वियों ने बहुत अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है, प्रभु के आश्रय में रहने वाली समस्त बच्चियाँ सेवापरायण हैं। छोटा हो अथवा बड़ा हो, भगवान् ने किसी को व्यर्थ समय नष्ट करने की अनुमति नहीं दी है। साधुओं को अगर किसी बात पर टोको तो बुरा मानते हैं क्योंकि उनमें 'अहम्' होता है। 'साधु' माने जो हर समय साधन करता है, एक क्षण भी व्यर्थ बात नहीं करता, वह है साधु। प्राय: साधु-समाज में आलसी लोग घुस आते हैं, बैठे-बैठे रोटियाँ तोड़ते हैं और साधन कुछ नहीं करते, इसलिए स्वयं को पतन से बचाने के लिए उनके पास से पृथक कर लेना चाहिए क्योंकि प्रमाद छुआछूत की बीमारी है, एक प्रमादी बहुतों को प्रमादी बना देता है। वृद्ध होने का यह मतलब नहीं है कि व्यर्थ बातें करो, वृद्धावस्था में सेवा नहीं कर सकते हो तो माला करो, छोटी झांझ से कीर्तन करो। किसी को भी प्रमाद करने से भगवान् ने मना किया है।

भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्याद् यतः स आस्ते सहषट्सपत्नः।
जितेन्द्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य गृहाश्रमः किं नु करोत्यवद्यम्॥

(श्रीमद्भागवत ५/१/१७)

जिसके अन्दर प्रमाद है, उसके ६ कामादि शत्रु हमेशा बने रहते हैं, न उसका काम हटेगा, न क्रोध। प्राय: वृद्ध होने पर भी लोग भजन नहीं करते, वृद्ध स्त्रियाँ बहुत बात करती हैं, यह प्रमाद है। श्रीमद्भागवत में कथा है कि प्रियव्रतजी साधु बनना चाहते थे, नारदजी भी उन्हें साधु बनाना चाहते थे लेकिन ब्रह्माजी उन्हें कर्मयोगी बनाना चाहते थे। पिता-पुत्र में खेंचातानी हो गई। ब्रह्माजी ने स्पष्ट रूप से कहा कि मनुष्य साधु भी बन जाए किन्तु यदि प्रमादी है तो उसका नाश हो जाएगा। यहाँ-वहाँ व्यर्थ बात करेगा, निंदा करेगा और राग-द्वेष में फँसकर अपना जीवन भी नष्ट करेगा और दूसरों का भी। जंगल जाने से क्या लाभ, साधु बनने से क्या हित होगा ? प्रमाद है तो सदा भय है। अनेक जंगलों में गये लेकिन भीतर प्रमाद है तो तुम्हें भय है, माया खा

जाएगी। तुम साधु बनने के बाद भी नष्ट होने से बच नहीं पाओगे।

सर्वप्रथम जब हम बरसाना आये तो हमसे किसी सिद्ध संत ने कहा था कि साधु-संग नहीं करना। हमें आश्चर्य लगा कि बिना साधु- संग के भक्ति कैसे मिलेगी ? वह महात्माजी बोले - बेटा ! पढ़ने-सुनने की बात अलग है, हम भी अनुभव की बात बता रहे हैं। साधुओं का संग मत करना अन्यथा नष्ट हो जाओगे क्योंकि प्रायः अब वे साधु नहीं रहे जो हर समय साधन करते थे। ज्यादातर आजकल के साधु तो कहाँ बढ़िया पंगत हो रही है, कहाँ अच्छी दक्षिणा मिल रही है, बस इसी तलाश में घूमते-रहते हैं, उनके साथ रहने से तुम पेटू बन जाओगे, अभी तो तुम वैराग्य से मधुकरी माँग के खाते हो। साधुओं के पास गए तो सच में हमने देखा कि कहीं भी भगवच्चर्चा नहीं है, हर जगह निंदा है। राग-द्वेष का ही वातावरण मिला तो हमने उनके पास जाना छोड़ दिया। आज तक हम किसी स्थान में नहीं गए। बात जब अनुभव में आ गयी तो समझ में आया कि वे महापुरुष ठीक कहते थे। इसलिए जहाँ भी प्रमाद है तो वहाँ ६ शत्रु काम, क्रोध आदि हमेशा पास बैठे रहेंगे। जो प्रमादी है, चाहे वह पढ़ा-लिखा हो, चाहे साधु हो, यदि उसमें प्रमाद है तो ६ अवगुण काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य अवश्य होंगें, इनमें से एक भी दोष आया तो नष्ट कर देगा। जिसमें प्रमाद नहीं तो वह जितेन्द्रिय है। भगवान् में विशुद्ध प्रेम व विशुद्ध ज्ञान (विवेक) है तो उस मनुष्य को गृहस्थ-जीवन भी नुक्सान नहीं करेगा, स्त्री भी आयेगी तो वह भी भजन करेगी। सब भजन करेंगे, समय नष्ट नहीं करेगें, उसका गृहस्थाश्रम भी साधु से अच्छा है। एक प्रमादी साधु सैकड़ों को चिलम, भोग, गप्प, निंदा, राग और द्वेष में फँसाता है। प्रमाद जीवन को नष्ट कर देता है। इसलिए ब्रह्माजी ने नारदजी से कहा कि प्रमाद हटाओ, प्रमादविहीन गृहस्थी भी साधु से अच्छा है, उसे गृहस्थाश्रम नुक्सान नहीं करेगा। मनुष्य को सतत साधनशील का ही संग करना चाहिए, ऐसा संग करना चाहिए जिससे प्रमाद नष्ट हो, चाहे वह साधु हो अथवा गृहस्थ। बेकार बैठने वाले के पास कभी मत बैठो। श्रीकबीरदासजी ने कहा है -

"बीत गए दिन भजन बिना रे।
बाल अवस्था खेल गँवायो, जब जवान तब मान घना रे॥"

कौमारावस्था से ही भक्ति करनी चाहिये। बचपन खेलने की आयु नहीं है, प्रमाद के लिए जीवन नहीं है। जो भी प्रमादी होते हैं, उनके पास रहने वाले भी आलसी हो जाते हैं। श्रीमानमंदिर, गुरुकुल के बालाराधक (बाल विद्यार्थी) प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त में जागकर श्रीराधारानी मन्दिर की मंगला आरती का दर्शन करते हुए नगर-कीर्तन के साथ बरसाने की परिक्रमा लगाते हैं। दुनिया में कहीं ऐसा बच्चों का समुदाय नहीं है। जिसके पास रहने से प्रमाद आये, चाहे वह महात्मा है, उसका संग कभी नहीं करना चाहिए। हजारों जंगलों में घूम आओ, विरक्त बनने के बाद भी यदि तुम्हारे अन्दर प्रमाद है तो नष्ट हो जाओगे। मनुष्य में प्रमाद आया और वह नष्ट हुआ। जैसे - सर्प चूहा खा जाता है, वैसे ही प्रमाद शरीर को या उम्र को खा जाता है। न प्रमाद स्वयं करना चाहिए और न पास वाले को प्रमादी बनाना चाहिए। श्रीमानमंदिर के सतत साधनरत बच्चे एक आवाज में ब्रह्ममुहूर्त में जग जाते हैं, इसका कारण यही है कि सब कर्मशील हैं, सबेरे से शाम तक समय नहीं कि खेलने जाएँ, ऊधम करें। भगवान् कहते हैं कि चौबीस घंटे साधन करना चाहिए। चंचल मन इधर-उधर जाता रहता है, उसे रोको, यही सच्चा भजन है।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ६/२७)

जिसका मन शांत होगा, उसी योगी को उत्तम सुख मिलेगा क्योंकि उसका रजोगुण शांत हो गया है, कल्मष नहीं रहा मन में, आलस्य नहीं है। ये कब हुआ, जब उसने ऐसा सतत साधन किया। जैसे ही एक क्षण को भी मन बाहर निकले तो उसे पटक लगाओ, एक क्षण को भी छुट्टी नहीं दो, यदि दया करोगे तो मन तुम्हें नष्ट कर देगा। मन बड़ा चंचल है, स्थिर नहीं रहेगा, ये हमें मार डालता है। ऋषभदेवजी के प्रसंग में शुकदेवजी कहते हैं -

नित्यं ददाति कामस्य छिद्रं तमनु येऽरयः।
योगिनः कृतमैत्रस्य पत्युर्जायेव पुंश्चली॥

(श्रीमद्भागवत ०५/०६/०४)

जो पुंश्चली स्त्री होती है वह बदमाशों से मिलकर अपने पति को मरवा देती है, इसी प्रकार मन विषय-वासनाओं को अवसर देकर ६ शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मत्सर के द्वारा प्रमादी जीव को नष्ट-भ्रष्ट (पतन) करा देता है। कल्याणपुर नामक गाँव में एक धनी व्यक्ति रहते थे, उनकी स्त्री पुंश्चली थी, उसने पति के साथ धोखा किया। रात को उसने किवाड़ खोल दिया तथा सात-आठ उसके प्रेमी बदमाश घुसे, उन्होंने उसके पति को पहले खाट में रस्सी में बाँध दिया, उसके पति अत्यंत पुष्ट पहलवान थे, बदमाशों ने बीसों रस्सियों की गाँठ लगा दिया, उसके बाद उनके एक-एक अंग को काटा और तड़पा-तड़पा के मारा। पुंश्चली के कारण उनका जीवन नष्ट हो गया। किसी को तड़पा के मारो तो कितना कष्ट होगा, वैसे ही हमारा मन है, यह जीवन भर हमें तड़पा-तड़पा के मारता है, बुरे कर्मो में ले जाता है। काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रु जीव को लूट लेते हैं। एक शत्रु नहीं, बहुत से शत्रु हैं। जैसे पुंश्चली पर उसके पति ने विश्वास किया तो उसने रात को किवाड़ खोल दिया, बदमाश घुस आये और पुरुष को घोर यातनाएँ देके मारा, वैसे ही हमारा मन है, हम अपने मन से मित्रता करते हैं, उसकी बात मानते हैं, संत-महापुरुषों के उपदेश की बात नहीं मानते हैं तो उसका परिणाम यह होता है कि पुंश्चली स्त्री की तरह मन हमें मरवा डालता है। जीव कष्ट पाता है, कितने 'गलत कर्म' मन करवाता है लेकिन हम समझ नहीं पाते। इसलिए जब तुम्हारा मन शांत होगा तभी तुम्हें उत्तम सुख मिलेगा और रजोगुण समाप्त होगा, तब तुम ब्रह्मस्वरूप होगे। उस समय जरा भी गंदगी नहीं रहेगी। जितनी गंदगियाँ आती हैं, उन्हें मन ही लाता है।

क्रमशः..

साधकों के लिए सावधानियाँ

व्यासाचार्य पं. श्रीमहेशचन्द्रजी शास्त्री, मान मन्दिर गहवर वन, बरसाना

परमार्थपथानुगामी को सद्गुरु या किसी महापुरुष का आश्रय लेना चाहिए, जिससे जिज्ञासु की शंका व संशय का निवारण हो जाए। महत्सङ्ग से भजन की रीति और सभी दैवी गुण शनैः शनैः आने लगेंगे। किन्तु महत्सङ्ग केवल परमार्थ की सिद्धि या भगवद्-प्रीति के लिये ही करे, अन्य संसारी कामना का लक्ष्य लेकर महत्-आश्रय लेते हो तो अपने साथ आप छल कर रहे हैं। महत्सङ्ग से सहज में संसार से असंगता, अनासक्ति, वैराग्य होगा, राग-द्वेष की निवृत्ति हो जाती है, चित्त-वृत्तियों का निरोध कर सकोगे। कृष्ण प्रेम, कथा-कीर्तन में प्रेम होना तथा समस्त चित्तवृत्तियों का भगवदोन्मुखी होना ही साधु-संग की वास्तविक उपलब्धि है, श्री कृष्ण में तन्मय होना ही भक्तियोग है। यदि चित्तवृत्तियों का बिखराव है या विषयोन्मुखी है, तो समझ लेना चाहिए कि हमारे साधन में या सत्संग में गलती हो रही है। सेवा में, भजन में रुचि नहीं हो रही है, हमारी वृत्तियाँ भगवदाकार नहीं हो पा रहीं हैं तो उसके तीन कारण हो सकते हैं - इसे 'मणि स्पर्श न्याय' से समझ लेना चाहिए, जैसे - पारस मणि के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है, कथञ्चित मणि के स्पर्श से स्वर्ण नहीं बना तो उसके तीन कारण हो सकते हैं - या तो हमने जिसे मणि माना है वह पारसमणि, पारसमणि नहीं है, यदि मणि शुद्ध है तो लोहा असली नहीं और लोहा भी शुद्ध है, मणि भी असली है तो उन दोनों के बीच में कहीं न कहीं अंतराल है, उनका ठीक संपर्क नहीं हुआ है। ठीक उसी प्रकार से हम लोगों को साधन, साधु-सङ्ग का वास्तविक लाभ नहीं हो रहा है, तो उसके भी तीन कारण हैं। जिसको हमने साधु माना, वह सच्चा साधु नहीं और सच्चा साधु है तो साधक सच्चा साधक नहीं है। यदि संत भी यथार्थ में संत हैं, साधक भी सच्चा साधक है फिर भी परमार्थ-पथ में उन्नति की जगह अवनति हो रही है तो दोनों के बीच में कपट है। साधक के जीवन में कपट की खटाई होगी तो भी गुरुजनों की सेवा का या उनके संग का यथार्थ लाभ नहीं होगा। साधक को सदा अपना ही दोष समझना चाहिए तभी उसके दोष दूर होंगे। सच्ची श्रद्धा से गुरुत्व भी प्रगट हो जाता है। राग-द्वेष की निवृत्ति होने पर ही भजन का लाभ होगा। 'सुखानुशयी रागः' सुख भोगने के पश्चात् जो उसकी वासना रहती है, वह राग है और वासना की अपूर्ति में द्वेष होता है। 'दुःखानुशयी द्वेषः' अर्थात् जिसे हम सुख का कारण मानते हैं, वहाँ पर राग होता है और जिसे दुःख का कारण मानते हैं, वहाँ द्वेष होता है। साधक को इन दोनों से ही परे होना होगा। राग-द्वेष के रहते परमार्थ-पथ पर चलना असम्भव है। राग-द्वेष की निवृत्ति होने पर असंगता और उपरामता आदि दैवी गुण स्वतः आ जायेंगे।

चित्त वृत्ति को भगवान् में लगाने के दो उपाय हैं - १. अभ्यास २. वैराग्य।

"अभ्यास वैराग्याभ्यां तान्निरोधः" (१२ समाधिपाद)

अभ्यास-वैराग्याभ्याम् = अभ्यास और वैराग्य से तत्-निरोधः= उनका (वृत्तियों का) निरोध होता है।

१. चित्त का स्वाभाविक प्रवाह वैराग्य द्वारा निवृत्त होता है।

२. अभ्यास द्वारा आत्मोन्मुख आंतरिक प्रवाह स्थिर होता है।

भगवान् वेदव्यास जी ने अभ्यास और वैराग्य को बड़े सुंदर रूपक से वर्णन किया है, जो इस प्रकार है

चित्त एक नदी है, जिसमें वृत्तियों का प्रवाह बहता है, इसकी दो धाराएँ हैं - एक संसार सागर की ओर तथा दूसरी कल्याणसागर की ओर बहती है। जिसने पूर्व जन्म में सांसारिक विषयों के भोगार्थ कार्य किये हैं, उसकी वृत्तियों की धारा उन संस्कारों के कारण विषयमार्ग से बहती हुई संसारसागर में जा मिलती है और जिसने पूर्व जन्म में कल्याणार्थ काम किये हैं, उसकी वृत्तियों की धारा उन संस्कारों के कारण विवेक-मार्ग में बहती हुयी कल्याणसागर में जा मिलती है। संसारी लोगों की प्रायः पहली धारा तो जन्म से ही खुली होती है, किन्तु दूसरी धारा को शास्त्र, गुरु, आचार्य तथा ईश्वर-चिंतन खोलते हैं। पहली धारा को बंद करने के लिए विषयों के स्रोत पर वैराग्य का बन्ध लगाया जाता है और अभ्यास के बेलचे से दूसरी धारा का मार्ग गहरा खोदकर वृत्तियों के समस्त प्रवाह को विवेक-स्रोत में डाल दिया जाता है, तब प्रबल वेग से वह सारा प्रवाह कल्याण रूपी सागर में जाकर लीन हो जाता है। इस कारण अभ्यास तथा वैराग्य दोनों ही मिलकर चित्तवृत्तियों के निरोध के साधन हैं।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

(गीता ६/३५)

जिस प्रकार से पक्षी का आकाश में उड़ना दोनों ही पंखों के आधीन है, केवल एक पंख से वह नहीं उड़ सकता, उसी प्रकार चित्तवृत्तियों को श्रीकृष्ण में लगाने के लिए दोनों का होना आवश्यक है। "स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कार सेवितो दृढ़भूमिः।" वह अभ्यास १. दीर्घकाल २. निरंतर ३. सत्कार से अर्थात् श्रद्धा-भक्तिपूर्वक किया हो, तभी फल देता है।

❑❑❑

गुरूकुल बाल वर्ग

भगवान् के लिए सर्वस्व का त्याग

(8 वर्षिया विरागा)

जाके प्रिय न राम बैदेही तजिए ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही।

भगवान् के लिए यदि सारे संसार को भी छोड़ना पड़े तो छोड़ देना चाहिए क्योंकि जीव के सच्चे हितैषी भगवान् ही हैं। जिसको भगवान प्यारे नहीं है उसको ष्तजिए ताहि कोटि बैरी समष् करोड़ो जन्मों के शत्रु के समान त्याग देना चाहिए, जैसे **तज्यो पिता प्रह्लाद** पिता को प्रह्लाद जी ने त्याग दिया था , विभीषण ने अपने भाई रावण को त्याग दिया था। जब विभीषणजी लंका को छोड़ कर गये तो लंका में रहने वाले राक्षस आयुहीन हो गये थे। तुलसीदासजी ने कहा है – **अस कही चला विभीषण जबहीं।आयु हीन भये सब तबहीं॥**

(रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड –४२)

जैसे – भरतजी ने अपनी माता कैकेयी को त्याग दिया था, वैसे ही मीरा ने भी अपने राज –पाट, माता –पिता और पति सबको त्याग दिया था और कहा था –

तात मात भ्रात बन्धु आपनो न कोई।
मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरों न कोई॥

हे प्रभु ! मेरे माता, पिता, भाई, बन्धु आप ही हो और दूसरा कोई नहीं है। वैसे ही बलि गुरु तज्यो ... जब भगवान् वामन रूप में आये तो राजा बलि से बोले कि मुझे दान दीजिए तो राजा बलि ने कहा जो आपको चाहिये, वह माँग लीजिए, तब भगवान ने कहा कि मुझे तीन पग पृथ्वी चाहिये तब राजा बलि ने कहा 'नाप लीजिए।' उनके गुरु ने कहा कि ये भगवान् हैं। वामन रूप बनाकर तुझे ठगने के लिए आयें हैं, लेकिन बलि ने कहा मैंने दान दे दिया है और दान दी हुई वस्तु मैं वापस नहीं लेता। इस तरह उनके द्वारा गुरु की अवज्ञा, गुरु त्याग ही हुआ।

वैसे ही गोपियों ने भगवान् श्रीकृष्ण के लिए अपने पति, बेटे–बेटी आदि सबको छोड़ दिया। जब गोपियों ने भगवान् श्रीकृष्ण की वंशी की धुन सुनी तो उनसे रहा नहीं गया और वे उसी स्थिति में चल पड़ीं। कोई अपने पति को भोजन परोस रही थीं, तो कोई अपने पति के चरण दबा रही थीं, कोई बच्चे को सुला रही थीं। इस तरह सब कुछ छोड़ कर के वह उसी स्थिति में चल दीं। जब भगवान् के पास पहुंची तो भगवान् बोले– अरे ! तुम लोग वापस जाओ–

मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः ।
विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो माकृ द्वं बन्धुसाध्वसम्॥

(भा.१०.२९.२०)

तुम्हारे माता, पिता, पुत्र, पति, बच्चे, बन्धु–बांधव आदि राह देख रहे होंगे। तुम लौट जाओ और उनकी सेवा करो। तब गोपियों ने उत्तर दिया– हे प्यारे श्यामसुंदर ! हम सब कुछ छोड़ कर तुम्हारे पास आई हैं, तुम हमें मत छोड़ो –

सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तवपादमूलम्॥

(भा.१०/२९/३१)

आगे कहती हैं –

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा॥

(भा.१०/२९/३२)

आप हमें स्वधर्म की शिक्षा देते हो, आपने ही तो गीताजी में कहा है–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८/६६)

तो हम सब कुछ छोड़ कर आई हैं, इसलिए हमारा त्याग मत करो। यही बात तुलसी दास जी ने रामचरित मानस में कहा है –

जननी जनक बन्धु सुत दारा।तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥

(रा.मा.सु.४८)

माता–पिता, बन्धु इन सबमे आसक्ति नहीं करनी चाहिए क्योंकि ये हमें भगवान से दूर करते हैं। आगे पद में तुलसीदासजी कहते हैं कि–

नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँख जेहि फूटै, बहुतक कहों कहाँ लौ॥

जीव के सच्चे साथी तो भगवान् ही हैं। ऐसा काजल लगाने से क्या फायदा जिससे आँख फूट जाये।

तुलसी सो सब भांति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो॥

वही प्राणों से प्यारा है जिसके संग से भगवान् के चरणों में प्रेम उत्पन्न हो जाये ।

भगवान् की अहैतुकी कृपा

(10 वर्षिया मधुबनी)

जाको हरि दृढ करि अंग करयो।
सोई सुसील, पुनीत, वेदविद, विद्या -गुननि भरयो॥

जिसको श्री हरि ने स्वीकार कर लिया है, वही सुशील, पवित्र, वेद का ज्ञाता और समस्त विद्या तथा सद्गुणों से भरा हुआ है। जिस पर भगवान कृपा करते हैं ,सारे सद्गुण अपना गौरव बढाने के लिए उसके अन्दर अपने आप ही आ जाते हैं।

मन्ये धनाभिजनरूपतपःश्रुतौजस्तेजःप्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः ।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान्गजयूथपाय॥

(भागवत ७/९/९)

उतपति पांडु सुतन की करनी सुनि सतपंथ डरयो।
तै त्रेलोक्य पूज्य पावन जस सुनि -सुनि लोक तरयो॥

पांडु पुत्र पाण्डवों की उत्पत्ति, उनका पूरा वंश ही गलत था क्योंकि उनके दादा व्यास जी कुंवारी कन्या से पैदा हुए थे अतः व्यास जी कानीन हुए, विधवा स्त्री से पाण्डवों के पिता पांडु उत्पन्न हुए अतः वह गोलक हुए। पाण्डव जारज या कुण्डज हुए क्योंकि पांडवों की उत्पत्ति देवताओं के द्वारा हुयी थी। पांडु को शाप था अतः वे संतान उत्पन्न करने में असमर्थ थे। जिसकी माँ कोई और हो, पिता कोई और हो, उसके जो पुत्र होते हैं वे जारज या कुण्डज कहलाते हैं। इस प्रकार पाण्डवों की ऐसी दोषयुक्त उत्पत्ति थी कि जिसको सुनकर सन्मार्ग डर गया। फिर भी, भगवान ने उनका ऐसा यश बढ़ाया कि उसे सुन–सुन कर लोग तर गये। वो कैसा यश था।

कुंती माता ने कहा –

के वयं नामरूपाभ्यां यदुभिः सह पाण्डवाः।
भवतोऽदर्शनं यर्हि हृषीकाणामिवेशितुः॥

(भागवत १/८/३८)

हे प्रभो! इन पाण्डवों का और सब यदुवंशियों का क्या नाम, क्या रूप है, आप के बिना हमारी कोई सत्ता नहीं है। पाण्डवों ने स्वयं को पूरी तरह से मिटा कर एक मात्र श्रीकृष्ण का ही आश्रय लिया, इसी कारण से वे तीनों लोकों में पूज्य हो गये।

जो निज धरम वेद बोधित सो करत न कछु बिसरयो।
बिनु अवगुन क्रकलास कूप मज्जित कर गहि उधरयो॥

राजा नृग ने वेद विहित स्वधर्म (अपना धर्म, जैसे राजा का धर्म है प्रजा पालन)के पालन में बिल्कुल भी कसर नहीं की। सतयुग में राजा नृग बड़े ही दानी राजा हो गये थे। वह नित्य एक करोड़ गौ दान किया करते थे, एक बार एक ब्राह्मण को दान की हुयी गाय भूल से उनकी गायों में आकर मिल गयी और उन्होंने उसे अपनी गायों के साथ दूसरे ब्राह्मण को दान कर दिया। पहला ब्राह्मण अपनी भूली हुयी गाय को तलाश करता हुआ गया तब उसने उसे दूसरे ब्राह्मण की गायों में चरते हुए देखा तो उस ब्राह्मण को चोर बताकर वह अपनी गाय को हांक चला। फिर दोनों ब्राह्मणों में झगड़ा होने लगा, दोनों लड़ते झगड़ते राजा के पास पहुँचे और राजा को इंसाफ करने के लिए कहा। राजा दोनों की बातें सुनकर सिर हिलाता रहा, कुछ उसकी समझ में नहीं आया कि क्या किया जाय। इस पर दोनों ब्राह्मण क्रोधित हो उठे और उन्होंने राजा को शाप दिया कि हे राजन! तूने हमें धोखा दिया है, इसलिए जा, गिरगिट योनि को प्राप्त हो। राजा गिरगिट हो गया और बेचारा सहस्त्रों वर्षों तक द्वारिका के एक कुएं में पड़ा रहा। फिर कृष्णावतार में भगवान ने उसे कुएं से निकाला तब वह शाप मुक्त होकर दिव्य शरीर धारण कर वैकुण्ठ चला गया, उसको भगवान ने दिव्य धाम भेज दिया।

ब्रह्म बिसिख ब्रह्माण्ड दहन छम गर्भ न नृपति जरयो।
अजर अमर कुलिसहूँ नहिन बध सो पुनि फेन मरयो॥

अश्वत्थामा में सारे ब्रह्माण्ड को जलाने की सामर्थ्य थी, उसने ब्रह्मास्त्र को उत्तरा के गर्भ पर लक्ष्य बनाकर छोड़ा तो वह भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में गयी और बोली –

पाहि पाहि महायोगिन् देवदेव जगत्पते ।
नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ।

(भागवत ०१/०८/०९)

हे जगत्पते! देवों के देव, मेरी रक्षा कीजिये। भगवान तो भक्तवत्सल हैं। अपने भक्तों की बात सुनता है ,उत्तरा के गर्भ में वह वीर शिशु अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र के तेज से जलने लगा तब उसने आँखों के सामने देखा कि एक ज्योतिर्मय पुरुष है।

अङ्गुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमौलिनम् ।
अपीच्यदर्शनं श्यामं तडिद्वाससमच्युतम्॥

(भागवत १/१२/८)

वो देखने में तो एक अंगूठे भर का है परन्तु उसका स्वरुप बहुत निर्मल है। अत्यन्त सुन्दर श्याम शरीर, बिजली की तरह चमकता हुआ पीताम्बर धारण किये हैं, सिर पर सोने का मुकुट झिलमिला रहा है, कानों में स्वर्ण के कुण्डल हैं, आँखों में लालिमा है, सुन्दर लंबी –लंबी चार भुजाएँ हैं, हाथों में लूक के समान जलती हुयी गदा लेकर उस शिशु के चारों ओर बार–बार घूम रहा है। उसने ब्रह्मास्त्र से गर्भ की रक्षा की। इसी प्रकार नमुचि नाम का असुर जो वज्र से भी नहीं मारा जा सकता था , वह फेन से मर गया।

विप्र अजामिल अरु सुरपति तें कहा जो नहिं बिगरयो।
उनको कियो सहाय बहुत, उर को संताप हरयो॥

अजामिल नामक एक ब्राह्मण था। किसी शूद्र को एक वैश्या के साथ विषय भोग करते हुए देखकर वह महापापी बन गया और इन्द्र से ऐसी कौन सी बात थी जो नहीं बिगड़ी हो लेकिन आपने उनकी बहुत सहायता की और उनके हृदय का संताप हर लिया।

गनिका अरु कंदरपते जगमहं अघ न करत उबरयो।
तिनको चरित पवित्र जानि हरि निज हृदि-भवन धरयो॥

पिंगला वैश्या ने और कामदेव ने जगत में ऐसा कौन सा पाप है जो नहीं किया था। किन्तु करुणामय भगवान् ने उनके चरित्र को पवित्र समझ कर उन्हें अपने हृदय भवन में स्थान दिया।

केहि आचरन भलो मानैं प्रभु सो तौ न जानि परयो।
तुलसिदास रघुनाथ कृपा को जोवत पंथ खरयो॥

भगवान् किस आचरण को अच्छा मान लेते हैं ये तो मालूम नहीं पड़ता। तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं तो श्री रघुनाथ जी के द्वार पर खड़ा होकर उनकी कृपा की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

गर्व त्यागकर गर्वहारी का भजन करो

(11 वर्षिया दया)

गरब गोबिंदहिं भावत नाहिं॥

ठाकुर जी को किसी का गर्व (अहंकार) अच्छा नहीं लगता है। मलूकदास जी ने कहा है -

गरब न कीजे बावरे, हरि गरब प्रहारी॥

अरे पागल मनुष्य, गर्व मत कर क्योंकि श्री हरि गर्व नष्ट करने वाले हैं ।

गरबहिं ते रावण गया, पाया दुःख भारी॥

गर्व के कारण ही रावण का विनाश हुआ और उसने दुःख सहा।रावण के सामने उसके भाई-बन्धु, पुत्र आदि की मृत्यु हुई, स्वयं को भी मृत्यु का ग्रास बनना पड़ा।अहंकार के कारण मनुष्य क्रोध करता है। क्रोध के कारण हमारी चेतना चली जाती है। भागवतजी में कहा है-

कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्तते ।
तमसा ग्रस्यते पुंसश्चेतना व्यापिनी द्रुतम्॥

(भा.११/२१/२०)

जब क्रोध आता है तब हमको उचित-अनुचित दिखाई नहीं देता है। रावण सीता माता का छल से हरण कर उन्हें लंका में ले गया, तब भगवान् राम ने हनुमानजी को भेजा कि जाओ रावण को समझाओ कि वह सीताजी को लौटा दे, तो हम रावण को क्षमा कर देंगे, तब हनुमानजी ने रावण से यह कहा

बिनती करउँ जोरि कर रावन ।
सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥

(रा.मा.सु.-२२)

श्री हनुमानजी ने हाथ जोड़कर कहा- हे रावण! तुम भगवान से द्रोह मत करो।

तब क्रोधित होकर रावण बोला-

मृत्यु निकट आई खल तोही ।
लागेसि अधम सिखावन मोही॥

(रा.मा.सु-२४)

एक बन्दर मुझे शिक्षा देता है, अरे बन्दर! तेरी मृत्यु आ गयी है क्या? उसने राक्षसों को आज्ञा दी- जाओ, इस बन्दर की पूँछ में आग लगा दो क्योंकि बन्दर को पूँछ बहुत प्यारी होती है। इस प्रकार रावण की चेतना का क्रोध के कारण नाश हो गया था। आगे सूरदासजी कहते हैं कि-

कैसी करी हिरनकस्यप सौं, प्रगट होइ छिन माहीं॥

जब हिरण्यकशिपु ने अहंकार किया था तब एक क्षण में ठाकुर जी ने नृसिंह रूप से प्रकट होकर उसका वध किया।

जग जानै करतूति कंस की, बृष मारयो बल माहीं॥

सारा जगत जानता है कि कंस दुष्ट पापी था जिसने देवकी के सात बच्चों की हत्या की थी, उस पापी कंस को एवं वृषासुर को भी ठाकुर जी ने अपनी भुजाओं के बल से मार डाला।

ब्रह्मा इन्द्रादिक पछिताने,गर्ब धारि मन माहीं॥

ब्रह्मा जी ने ग्वालबालों को चुराया तो भगवान् स्वयं ग्वालबाल व बछड़े बन गये तब ब्रह्मा जी समझ गये कि ये तो स्वयं भगवान् श्री कृष्ण हैं, और अपनी गलती पर बहुत पछताए । इन्द्र ने ब्रजवासियों पर कोप किया, बादलों को भेजा कि जाओ ब्रजवासियो के ऊपर भयंकर शिलाओं की वर्षा करो तब उन बादलों ने भयंकर वर्षा की, तब ब्रजवासियो ने कहा-

कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो ।
त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद् भक्तवत्सल॥

(भा.१०/२५/१३)

ठाकुर जी समझ गये और सोचने लगे कि मेरे अतिरिक्त इनकी कोई रक्षा नहीं कर सकता, तब ठाकुर जी ने गोर्वधन उठाया और ब्रजवासियों की रक्षा की। इन्द्र सोचने लगा कि मैंने गर्व किया इसलिए वह मन में ही स्तुति करने लगा तब भगवान ने उसे क्षमा कर दिया।

जौवन-रूप-राज-धन-धरती, जानि जलद की छाहीं॥

भगवान ने कहा है-

विद्यातपोवित्तवपुर्वयःकुलैः सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः ।
स्मृतौ हतायां भृतमानर्दुर्दृशः स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम्॥

(भा.४/३/१७)

विद्या, तप, वित्त (पैसा), वपु (जवानी), अच्छा कुल- इन सबके कारण मनुष्य को मद हो जाता है। जानि जलद की छाहीं इनको बादल की छाया के समान जानना चाहिए।

सूरदार हरि भजौ गर्ब तजि, बिमुख अगति कौं जाहीं॥

सूरदासजी कहते हैं कि अहंकार को छोड़कर भजन करना चाहिए। जो भगवान् से विमुख हैं वे तो नरक में जायेंगे।

❑❑❑

कृष्णप्रेममयी रानीरत्नावती

श्रीबाबामहाराज के "एकादशी-सत्संग" (२३/०९/२००७) से संकलित

संकलनकर्त्री/लेखिका - साध्वी गौरीजी, दीदी माँ गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा

पिता द्वारा फटकारे जाने पर प्रेमसिंह जी वहाँ से चले गये और अपने महल में शहनाई वाले बुलाये और उनसे कहा कि आप सब लोग बधाई गाओ, वे (शहनाई वाले) बोले- "क्यों?" प्रेमसिंह ने कहा कि हमारी माँ को आज पिताजी ने मुण्डीबाई कहा है, यानि भक्त हो गई हैं इसलिए बधाई बजाओ, लड्डुआ बाँटो, रुपया लुटाओ। अब वहाँ राजा साहब के कान में खबर हो गयी कि वहाँ तो शहनाई बज रही है । राजा बोले- "क्यों?" तो लोगों ने कहा कि वह बधाई बाँट रहा है, रुपया लुटा रहा है, मिठाई बाँट रहा है कि हमारी माँ कीर्तन में नाची । राजा बोले "ओहो ! इसी लड़के को पहले खत्म करना चाहिए, साँपिन का बेटा साँप है ।" तुरन्त राजा साहब ने आदेश दिया कि सजाओ फौज । तो नगाड़ा बजने लगा, युद्ध की तैयारी होने लगी । इधर प्रेमसिंह के पास खबर गई कि तुम शहनाई बजा रहे हो और उधर राजा साहब के यहाँ तो नगाड़ा बज रहा है, युद्ध की तैयारी हो रही है तुम्हारे ऊपर चढ़ाई करने के लिए। उन्होंने (प्रेमसिंह ने) भी आदेश कर दिया कि बजाओ नगाड़ा। लोगों ने पूछा कि क्या आप लड़ेंगे? प्रेमसिंह ने कहा- "हाँ, वह मेरा बाप नहीं, हिरण्यकश्यपु है। आज मैं रहूँगा या वह रहेंगे, बाप-बेटा का युद्ध होगा ।" सजा दिया फौज और यहाँ से इनके भी नगाड़े बजने लगे। तब जो बूढ़े मंत्री थे, उन्होंने परस्पर में कहा कि अरे भाई! ये दोनों ही मर जायेंगे बाप और बेटा, इससे हमारा राज्य चला जाएगा, आमेर की गद्दी खत्म हो जायेगी, अब क्या किया जाये? तो वयोवृद्ध मंत्री लोग गए माधवसिंह के पास और बोले- "सरकार! एक रानी (स्त्री) के पीछे आपका राज्य चला जाएगा, आप दोनों बाप-बेटा मर जाओगे और सब राजपूत खत्म हो जायेंगे, यवन ले लेगें सब राज्य । इससे अच्छा है कि रानी रत्नावती को खत्म कर दिया जाय, उसे हमलोग मार डालेंगे । आप दोनों (बाप-बेटा) यहीं मर जाओगे तो रानी को कौन मारेगा?" माधवसिंह के समझ में आ गयी बात कि हम दोनों ही मर जायेगे तो रानी को कौन मारेगा? इसके बाद फिर मंत्रियों ने रानी को मारने की योजना बताई राजा साहब को- "एक 'बब्बर शेर' पकड़ेंगे, उसको कई दिन तक भूखा रखकर के जब रानी शाम को आरती करती हैं, उस समय कोई भी आरती देखने के लिए चला जाय, रोक-टोक नहीं रहती है, सैकड़ों लोग आ जाते हैं आरती-दर्शन करने के लिए, आरती में नाचती हैं रानी, महल के दरवाजे खोल दिए जाते हैं उसी समय शेर को छोड़ दिया जाएगा और वह रानी को खा जायेगा।" यह सुनकर राजा बोले कि ठीक है और नगाड़े बंद करवा दिए । लड़ाई रुक गयी जो बाप-बेटे में होने वाली थी। अब वे मंत्री लोग सीधे आमेर (राजस्थान की प्राचीन राजगद्दी) में आये, सभी मंत्रियों से सलाह किया। जिस समय रानी साहब संध्या को आरती करतीं थीं तो हॉल खोल दिया जाता था । उस दिन ऐसा हुआ कि राजा साहब ने पहरेदार लगा दिए थे तो कोई व्यक्ति भी रानी के मन्दिर में नहीं पहुँच पाया, वहाँ केवल रानी साहब और उसकी दासी थीं। जब भोग लगाने के बाद आरती करने के लिए वे खडीं हुई तो उतने में ही जो बड़ा सिंहद्वार था, वहाँ से उस शेर को पिंजरे में से निकालकर के भूखा छोड़ दिया गया और राजा साहब ३-४ मंजिल ऊपर बैठे अपने दुष्ट मंत्रियों (जो राजा के कान भरते थे) के साथ आराम से तमाशा देख रहे थे। अब शेर चला, गरजा, दौड़कर (छलाँग लगाकर) वहीं पहुँचा जहाँ आरती हो रही थी। दासी बोली- "रानी साहब! ये बब्बरी शेर आ गया है, बड़ी जोर से गर्ज रहा है, भीतर चली जाओ।" (रानी की गुरु दासी समझा रही हैं शेर से बचने के लिए, लेकिन शिष्या रानी अपने गुरु से भी आगे चली गई भक्ति-भाव में।) रानी सच्ची भक्त बन गई थीं, जब मुड़कर के देखा कि शेर गुर्रा रहा है तो उस समय वह (रानी रत्नावतीजी) आरती का थाल लेकर मन्दिर में अन्दर जाने के बजाय शेर की ओर चल पड़ीं, (जबकि दासी तो कह रही हैं कि भाग जाओ लेकिन वे निर्भयता से आगे बढ़ीं शेर की तरफ) क्योंकि उन्होंने कथायें सुनीं थीं कि प्रह्लाद के लिए नृसिंह भगवान् ने हिरण्यकश्यपु को मारा लेकिन प्रह्लाद को गोद में बैठाकर प्यार किया था । भगवान् अपने भक्तों से प्यार करते हैं, दुष्टों का नाश करते हैं। तो रानी ने सोचा कि मैं तो भगवान् का कीर्तन करती हूँ। भगवान् मुझे कैसे मारेंगे? ये तो नृसिंह भगवान् हैं, मुझे प्यार करेंगे तो वे गुणगान (रसमयी आराधना) से रिझाने लगीं नृसिंह भगवान् को

आवो नृसिंह आवो, आवो नृसिंह आवो।
जय जय नृसिंह जय जय नृसिंह॥

परीक्षा होती है, शेर गरजा लेकिन उस गरजना को सुनकर के वे आगें बढ़ीं, उनका विश्वास था कि ये हमारे भगवान् हैं ।

अति भीषण तुम्हारो यह गरजन,

(तुम्हारा ये गर्जना हमारे मन को बहादुर बनाएगी।)

निर्मल कर देवे सबके मन। भक्ति दान करे निज जन-जन॥
तुम्हारा गर्जना दिखा रहा है कि तुम हमारे ऊपर कृपा कर रहे हो ।
तुम हम पर कृपा दिखावो। आवो नृसिंह आवो .....

शेर की आँख बड़ी चमकती है। "ये नेत्र तुम्हारे अति ज्वलन्त" दाढ़-दाँत भयानक होते हैं, जब मुँह खोलता है तो बड़े-बड़े दाढ़-दाँत दिखाई पड़ते हैं।

विकराल होठ विकराल दन्त, दुष्ट जनन का करें अन्त॥
तुम हम पर दया दिखावो। आवो नृसिंह आवो .....

शेर के बड़े-बड़े बाल होते हैं गर्दन पर, जब हमला करता है तो बालों को झड़झड़ाता है, अत: उसको केशरी कहते हैं ।

ये गर्दन पर केशरी बाल, सब लटक रहे सोभा विशाल।
तुम करुणा वृष्टि कराओ, आवो नृसिंह आवो .....

रानी साहब आरती लेकर के शेर के पास पहुँच गयीं, जबकि शेर आग को देखकर के भाग जाता है कि कहीं बालों में आग न लग जाय, शेर केवल आग से दूर रहता है, इसीलिये बड़े-बड़े साधु जंगल में शेर से बचने के लिए धूनी (आग) को अपने पास रखते हैं। जब आरती लेकर रानी पहुँचीं तो शेर हटा नहीं। रत्नावतीजी बोलीं

प्रह्लाद भक्त के तुम स्वामी, जो भक्त जनन में हैं नामी ।
हम भी हैं उनके अनुगामी, तुम हमको भी अपनाओ॥
आवो नृसिंह आवो .....

रानी साहब आगे बढ़ीं और नृसिंह भगवान् (शेर) से कहा 'प्रभु! भोग लगाओ।' लड्डू, पेड़ा, बर्फी आदि मिठाइयाँ थाल में से निकाल-निकाल कर उनके मुख में दे रही हैं और नृसिंह भगवान् बड़े प्रेम से खा रहे हैं। फिर पानी पिलाया, आरती उतारी उसके बाद चरणों में गिर पड़ीं, शेर ने पंजा उठाकर के थाप (आशीर्वाद) दिया रानी की पीठ पर और फिर दासी ने भी प्रणाम किया। उधर राजा (जो बहुत ऊपर चौमंजिले पर बैठा हुआ था) ने पूछा कि शेर ने रानी को मारा कि नहीं, रानी मरी या दासी मरी। दुष्ट मंत्रियों ने कहा कि महाराज! कोई नहीं मरा। अरे! वह शेर तो लड्डुआ खा रहा है जो रानी साहब ने भोग लगाये थे (वैसे तो सिंह कभी लड्डुआ नहीं खाता है, वह तो खून पीता है लेकिन यहाँ रानीजी के प्रेम-भाव-भक्ति का आदर 'सम्मान' कर रहा था।) इसके बाद शेर पीछे हटा और जोर से गरजा, गरजने के बाद उछला (जबकि शेर १२ हाथ ही उछलता है लेकिन यहाँ बहुत बड़ी छलाँग लगाई), उछलकर सीधा वहाँ पहुँचा जहाँ ३-४ मंजिल ऊपर वे दुष्ट 'विमुख, नास्तिक' लोग बैठे थे, उन सबको एक-एक थाप में समाप्त कर दिया और गरजता हुआ बाहर चला गया। रह गये राजा साहब अकेले, राजा को छोड़ दिया था क्योंकि रानी विधवा हो जाएगी। तब राजा साहब ऊपर से उतरे, होश आया कि हमने बड़ी भूल किया, ये तो भगवान् की भक्त है। रानी साहब प्रभु की आरती करके साष्टांग दण्डवत कर रही थीं। राजा साहब ने जाकर के रानी साहब के चरणों में पीछे से साष्टांग दण्डवत किया (अरे! इतने बड़ा चमत्कार देखने के बाद भी आँख नहीं खुलेगी?) समझ गये कि शेर चाहता तो हमको भी मार देता, सब मंत्रियों को खत्म कर दिया एक-एक थाप में, ऐसी थाप मारा कि सबके मूँड़ (सिर) अलग हो गये। इसी रानी के कारण आज मैं जिन्दा हूँ, बचा हूँ।

जब राजा ने प्रणाम किया तब रानी साहब कुछ नहीं बोलीं, न ही देखा, तो दासी बोलीं कि रानी साहब! राजा साष्टांग दण्डवत प्रणाम कर रहे हैं आपको । रानी बोलीं- "मुझे नहीं, ये तो प्रभु को प्रणाम कर रहे हैं।" यानि अपनी बात टाल दिया। फिर दासी बोली- "इनकी दीनता तो देखो, राजा होकर के तुम्हारे चरणों में पड़े हैं।" तो रानी रत्नावती जी बोलीं- "मेरी आँखें अब केवल कृष्ण को देखेंगी, इस जीवन में और किसी पुरुष को नहीं देखेंगी।"

"मेरे सरकार मनमोहन तू ही जग में हमारा है ।"
"तेरे प्यार में मनमोहन, सब कुछ लुटा चले।
सब कुछ भी भूली भूली, खुद को भी तो भूली मैं,
कुछ भी न साथ मेरे, इक तेरी याद ले चले।
हस्ती हैं जो बनाते, बनाया वे करें, हमको नहीं बनाना,
पग धूर बन चले॥"

इसको कहते हैं भक्ति, तब चमत्कार होता है। राजा साहब बोले- "रानी साहब! तुम हमसे मत बोलो लेकिन हम तुमको सारा राज्य अर्पण करते हैं ।" रानी ने स्पष्ट (साफ) कह दिया- "मेरे तो केवल कृष्ण हैं, मुझे संसार नहीं चाहिए, तुम दूसरा विवाह कर लो।"

"हम कृष्ण पै ही कुर्बान हुए सच मानें मेरा कहना है।
इस दुनिया में श्याम बिना अब और नहीं कुछ अपना है॥"
"कृष्ण से प्यार है जिनका, उन्हें दुनिया से क्या मतलब।"

अरे ! जिसको विषयों की भूख है, वह भक्त नहीं हो सकता जिसको मल-मूत्र चाहिए, उसमें भक्ति कहाँ होगी ?

राजा साहब बोले- "रानी साहब! जब तक मेरा जीवन है, विवाह तो दूर रहा, (तुम पाँव नहीं छुवाओगी) मैं तुम्हारा चरणामृत मँगवा-मँगवा कर पिऊँगा और तुम्हारा दास बनकर रहूँगा (विवाह तो खत्म हो गया), जब तुमने भोग छोड़ दिया तो अब हमने भी सदा के लिए छोड़ दिया।" इसके बाद पिता और पुत्र में भी प्रेम हो गया। रानी साहब ने फिर कभी राजा की ओर देखा नहीं, श्रीकृष्ण के लिए सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर कृष्णाराधन में कृष्णप्रेममयी बन गईं।

❑❑❑

अनासक्ति ही आनन्दमूल

श्रीबाबामहाराज के प्रवचन "गोपी गीत" (२६/०७/१९९७)से संकलित

संकलनकर्त्री/लेखिका - साध्वी चन्द्रमुखी जी, दीदी माँ गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा

भगवान् ने कहा–

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥

(गीता २/१५)

जिसको विषमतायें (राग-द्वेष आदि के द्वंद्व) व्यथा नहीं पहुँचाती हैं, जिसके लिए सुख-दुःख समान हो गये हैं, वह अमृतत्त्व (भगवद्रस) को प्राप्त कर लेता है। भगवान् ने कहा कि वास्तविकता तो ये है कि संसार के जितने भोग हैं, बाह्य परिस्थितियाँ हैं, यदि तुम्हारे दिल पर चोट करते हैं, उनका प्रभाव पड़ता है तो तुम उस अविनाशी पद पर नहीं पहुँच सकते हो, भले ही आप अपने मुख से प्रशंसा करो कि हम बहुत ऊँचे हैं, हम प्रह्लाद बन गए या हम बहुत उच्च शिखर पर पहुँच गए। असली बात यह है कि संसार की परिस्थितियाँ (अमीरी, गरीबी, स्त्री, पुत्र आदि से सम्बंधित अहंता-ममता) तुमको व्यथा नहीं पहुँचाती है, तुम्हारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं डालती हैं तो तुम अमर बन गए।

किसी ने गाली दे दिया, किसी ने अपमान कर दिया, अब सोच-सोच के दुःखी हो रहे हैं कि हमारी नाक कट गई या किसी के ऊपर ऋण हो गया तो लोग आत्महत्या तक कर लेते हैं। एक बार हमारे पास एक व्यक्ति ने आकर बताया कि उनके गाँव के एक भले व्यक्ति पर कर्ज हो गया तो उसने आत्महत्या कर ली। इसी प्रकार प्रायः हमारे पास बहुत से लोग आते रहते हैं, अपनी समस्याएं बताया करते हैं। एक अन्य व्यक्ति ने आकर बताया कि उनके मित्र ने अपने पुत्रों द्वारा अपमानित होने पर आत्म हत्या कर ली, यह अज्ञान है मरते क्यों हो ? संसार से मन हटालो यह मनुष्य जीवन मिला है तो भजन करो। बेटे से कष्ट है तो बेटे से मन हटालो, आत्महत्या करोगे तो १-१ वर्ष के बदले १-१ लाख वर्ष तक भूत बनना पड़ेगा। दूसरों की हत्या करने से आत्महत्या हजारों गुनी बड़ी है लेकिन लोग तनाव के कारण अज्ञान से आत्महत्या कर लेते हैं इस जिन्दगी की कीमत ही नहीं समझते। भगवान ने मनुष्य बनाया तो अपने आपको इतना बड़ा दंड क्यों देते हो ? आत्महत्या करने वाले से भगवान् कहते हैं- ''अरे! मैंने तुमको मनुष्य बनाया था, वह जिन्दगी तुम्हारी नहीं थी, वह मेरी दी हुई थी, तुमने उसे समाप्त कर दिया, अब जाओ लाखों वर्ष तक भूत बनो।'' अतः ये व्यथा अज्ञान से होती है। अगर मनुष्य सत्संग करे और प्रतिदिन विचार करे कि हमने खुद पकड़ रखा है बेटा-बेटी, धन सम्पत्ति को, इन्होंने हमको नहीं पकड़ा है। देखो, संसार से मुक्त होने का बहुत सरल उपाय है, बहुत सस्ता उपाय है, भगवान कहते हैं कि तू जीते जी मुक्त हो जाएगा। हम अमर कैसे बनें अर्थात् भगवान से कैसे मिलें ? इसका एक नुस्खा आपको रामायण से बता रहे हैं, सब जगह ये नुस्खे लिखे हुए हैं, ये दवाइयां हैं, हम इन दवाइयों को पकड़ते नहीं हैं। आसक्ति कैसे छूटे क्योंकि यदि हम आसक्ति छोड़ दें तो भवसागर पार हो जायेंगे। किसी चीज को अपना मानने से आसक्ति होती है और किसी चीज को पराया समझने से मन उससे हटता है, यह नुस्खा है, ये भवसागर पार होने की औषधि है। अपना माने ममता करना, हम खुद संसार को पकड़ते हैं। संसार हमको नहीं पकड़ता है। ये बिलकुल झूठ बात है, हम खुद पकड़ते हैं। इसे एक उदाहरण से समझिये - एक गुरुजी थे और उनका चेला था। एकबार गुरुजी नदी में नहाने गए, नदी के किनारे आरती हो रही थी। सूर्यास्त के कारण अन्धेरा हो रहा था तो गुरु जी ने कहा- "बच्चा तू भी भजन कर ले।" चेला बोला- "गुरुजी! वह देखो, पानी में कंबल बहा जा रहा है, कैसा कीमती काला कम्बल है।" गुरुजी बोले- "बेटा लोभ न कर, कम्बल का क्या करेगा, कम्बल बड़ी चीज नहीं है, भजन कर ले।" चेला बोला- "गुरुजी ! मैं कम्बल ले आऊँ।" गुरुजी बोले- "तैरना जानता है तो कूद पड़।" वह कम्बल नहीं था, वह तो भालू था, जो नदी में बहा जा रहा था, देखने में वह कम्बल की तरह लग रहा था, वह बड़ा खतरनाक होता है। चेले ने नदी में कूद कर कंबल के धोखे में भालू को पकड़ लिया। अब तो भालू ने चेले को पकड़ लिया। चेला चिल्लाया- "गुरुजी! बचाओ।" गुरुजी बोले- "अरे मूर्ख, कम्बल को छोड़ दे और यहाँ चला आ, हम क्या बचावें ?" तो चेला बोला कि मैंने तो कम्बल को छोड़ दिया लेकिन कम्बल मुझे नहीं छोड़ रहा है।

ये तो समझाने के लिए दृष्टांत था कि संसार में हम लोग खुद जाकर उसे पकड़ते हैं। कैसे पकड़ते हैं ? हाथ से नहीं, मेरापन करके पकड़ते हैं। जैसे - बचपन में बच्चे छोटे-छोटे कंचों से खेलते हैं तो कोई बच्चा कहता है कि मेरे पास ५० हैं, कोई कहता है कि मेर पास १०० कंचे हैं। इस प्रकार बचपन में बच्चे ने कंचे को अपना माना, फिर और बड़ा हुआ तो पैसे को अपना समझने लग गया और बोला कि ये पैसा हमारा है, फिर और बड़ा हुआ, स्कूल जाने लगा तो कहता है कि ये साइकिल हमारी है, ये बस्ता हमारा है, ये झोला हमारा है फिर आगे चलकर उसका ब्याह हुआ तो बोला कि ये बहू हमारी है, फिर आगे बच्चा हुआ तो बोला कि बच्चा हमारा है। इस प्रकार भीतर से जो यह अभ्यास है कि ये हमारा है, इसी को ममता कहते हैं और इस ममता को छोड़ने से भगवान मिल जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि घर में रहो लेकिन हमारा, हमारा मत सोचो, बल्कि यह सोचो कि ये सब पराया है, अपना शरीर भी पराया है। इसे अपना मत समझो। शरीर को अपना समझने से ही काम, क्रोध आते हैं जैसे किसी ने आप को गाली देकर कहा कि तू गधा है। अब आप यही सोच-सोच कर दुःखी होते हैं कि उसने मुझे गधा कह दिया, बीच बाजार में मुझको गुंडा कह दिया। अब तुम इसी बात पर परेशान होते हो लेकिन वास्तविकता यह है कि गाली का शब्द तुम्हारे चिपट नहीं गया, न ही बिच्छू बन कर खा गया और न ही साँप बन के लिपट गया। वो जो शब्द थे गधा और गुंडा, वे तो आकाश में उड़ गये। इसलिए हम सब लोग बड़े ही मूर्ख हैं किन्तु

अपने को बुद्धिमान समझते हैं, अपने को नेक बताते हैं जबकि सच्चाई यह है कि इस मामले में हम सब एक नम्बर के मूर्ख हैं। हम स्वयं शब्द को पकड़ते हैं, उसको अपना मानते हैं। एक उदाहरण लीजिये, किसी ने कहा- अजी आप तो फूल हैं, यह सुनकर हम खुश हो गए कि इसने हमको फूल कहा, फूल अर्थात जिससे सुगंध निकलती है जैसे गुलाब का फूल होता है, गेंदा का फूल होता है और किसी ने कहा - यू आर फूल। (you are fool.) अंग्रेजी में फूल माने होता है बेवकूफ (गधा)। अब हिन्दी में फूल माने सुगंध देने वाला और अंग्रेजी में फूल माने बेवकूफ (गधा)। इसलिए गाली क्या है, कुछ नहीं, प्रत्येक शब्द को ले लीजिये। प्रत्येक शब्द का अर्थ एक भाषा में तो अच्छे के लिए प्रयुक्त होता है और दूसरी भाषा में गाली के रूप में। मनुष्य केवल उसको व्यर्थ ही अपना मान लेता है और दुखी होता रहता है, इस शरीर से ममता जोड़ लेता है और शब्दों के द्वारा शरीर का मान-अपमान समझकर वह मूर्ख इस संसार में ही आसक्त होता रहता है। अगर इन चीजों को तुम पराया मानोगे तो संसार से छूट जाओगे। यदि तुम्हारी ममता बेटे में है तो उसे बेटे से हटालो, बेटा नहीं छोड़ो, उसे रोटी-कपड़ा दो। लड़की में भी ममता मत करो, लड़की है तो उसका ब्याह करो लेकिन ये समझते रहो कि ये हमारी नहीं है, मकान को भी अपना मत समझो, इस दुनिया की किसी भी चीज को अपना मत समझो। रामायण में भगवान राम विभीषण से कहते हैं कि इस दुनिया में सब जगह से ममता हटाले तो तू मेरे पास पहुँच जाएगा। आप भी समझो चौपाई -

जननी जनक बन्धु सुत दारा।तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सब कर ममता ताग बटोरी।मम पद मनहि बाँधि बरि डोरी॥

(रा.सु.का.-४८)

जननी माने माँ, जनक माने पिता, बन्धु माने भाई, सुत माने बेटा, दारा माने स्त्री, तन माने शरीर, धन माने पैसा, भवन माने मकान, सुहृद माने मित्र और नाते-रिश्तेदार तथा परिवार - इनको हम अपना समझते हैं। इनमें आदमी ममता करता है। ताग माने धागा, मेरापन का धागा हमने बांध रखा है। भगवान कहते हैं कि सब जगह से ममता (मेरापन) हटाकर उसे मेरे चरणों में बांध दो। केवल भगवान् के चरण हमारे हैं और दुनिया में कोई वस्तु हमारी नहीं है। ये दस जगह हैं, जिनको हम अपनी समझते हैं। हमारे जैसे लोग बाबा जी बन गए फिर भी शरीर में मेरापन लेकर बैठे रहते हैं। ये हमारी कुटिया है, ये हमारा कमंडल है। वस्तुत: ये सारी चीजें जहर हैं, भगवान से दूर करती हैं, इनमें हर समय मेरापन हटाते रहो, ये सब पराया है, इससे आसक्ति छूट जायेगी और भगवान् मिल जाएंगें। जीव जब संसार में किसी चीज को अपना समझता है तो यह उसका कपट है, नीच कपट है, इसको कैतव कहा है महाप्रभु जी ने। हम अपने आप को धोखा दे रहे हैं, हमने अपने आपको शरीर मान रखा है, ये धोखा है, ये शरीर हमें छोड़ रहा है, ये शरीर जा रहा है।शरीर माने क्या होता है- शीर्यन्ते इति शरीराणि ये शरीर हर समय फट रहा है और हम इसको अपना समझे बैठे हैं, ये धोखा है। हम अपने साथ कपट करते हैं। हम अपने साथ छल करते हैं, अपना गला काटते हैं। भगवान् राम ने कहा है कि वह आत्महत्यारा है। आत्महत्यारा तो वही होता है जो जहर खाता है । ये जहर है संसार -

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।

भगवान् ने मनुष्य बना दिया है फिर भी हमलोग ८४ लाख योनियों में जाने की तैयारी कर रहे हैं। वही गधा, ऊँट, भैंसा, बनने की तैयारी कर रहें हैं अत: हम लोग आत्म हत्यारे हैं। ऐसा मनुष्य शरीर मिला और फिर भी भवसागर पार नहीं कर पाए तो भगवान् राम ने आगे कहा -

सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड -४४)

वह मनुष्य आत्म हत्यारा है। इसलिए जीव का कपट क्या है ? इस शरीर को अपना मानना। भगवान् का कपट कितना मीठा होता है ? भगवान् का कपट मीठा होता है क्योंकि वह प्रेम बढ़ाता है। भगवान भी कपट करते हैं, वह जब-जब पृथ्वी पर अवतार लेके आते हैं तो अनेक तरह की लीलायें करते हैं, अपने आप को छिपाते हैं, ये सब कपट है। **'परोक्षवादा हि देवः'** वेदों में लिखा है कि देवताओं को परोक्षवाद प्रिय है। ये भी कपट है लेकिन ये कपट मीठा है, हमको भगवल्लीला स्मरण करने का अधिकारी बनाता है। हम अधिकारी बनते हैं तब हमारे सामने स्वरूप आता है। भगवान भी भक्तों की तरह लीला कहते हैं, कपट करते हैं लेकिन उसका परिणाम सुंदर होता है। उसका परिणाम बुरा नहीं होता है। रघुनाथ दास गोस्वामी जी इतने धनी थे कि उनके पास राजाओं जैसा वैभव था, लेकिन उनके मन में वैराग्य आया और उन्होंने विचार किया कि संसार कुछ नहीं है, उस जमाने में उनके पास करोड़ों की सम्पत्ति थी, १२ लाख रुपये तो उनको आमदनी में प्राप्त होते थे जो आज के अरबों रुपये के बराबर हुए। एकबार वह नित्यानन्द महाप्रभु के दर्शन करने गए जो साक्षात् बलराम जी थे। रघुनाथदास जी उनके पास गंगा पार करके गए तो नित्यानन्द जी महाराज वहाँ बैठे थे। उन्हें देखकर नित्यानंद जी बोले- "अरे चोर ! तू कहाँ रहा इतने दिन तक ?" अब सब लोग बड़े आश्चर्य चकित हुए। नित्यानंदजी रघुनाथ दास जी से बोले कि अब तुमको दंड दिया जाएगा। इस प्रकार का कपट प्रेम में होता है। नित्यानंद जी बोले - यहाँ जितने भक्त हैं, उन सबको चिवड़ा का भोजन करा। अब बहुत बड़ी पंगत हुयी। नित्यानंद जी ने कृपा किया कि इसका धन इतने सारे भक्तों की सेवा में लग जाए। उसमें और एक लीला हुई कि जब भोग लगाया नित्यानन्द महाप्रभु जी ने, तो वहाँ साक्षात् चैतन्य महाप्रभु जी प्रगट हुए। लेकिन सब को नहीं दिखाई पड़ा, नित्यानंदजी चैतन्यमहाप्रभु को एक-एक ग्रास खिला रहे हैं, केवल यह रहस्य जानने वाले जान रहे हैं और देखने वाले देख रहे हैं। ये सब क्या है, यह कपट है, कपट के बिना लीला ही नहीं होती है। और हमलोगों का कपट ये है कि हम संसार को अपना माने बैठे हैं, इस शरीर को अपना माने बैठे हैं, घर को, पैसे को, कुटिया-मकान आदि को अपना माने बैठे हैं लेकिन भगवान का कपट मंगलदाई होता है। गोपियों और कृष्ण की लीला भी प्रेममय कपट से भरी है। गोपियों ने कहा कि श्रीकृष्ण ! कोई कपटी भी होगा तो वह भी रात में स्त्रियों को अनाथ नहीं छोड़ता जैसे तुम हमको छोड़ के चले गए हो।

क्रमश....

मानिनी के मान में मानद का दैन्य

श्रीबाबामहाराज के प्रवचन श्रीराधासुधानिधि (३०/०४/१९९८) से संग्रहीत
संकलनकर्त्री/लेखिका - साध्वी माधुरीजी, दीदी माँ गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा

जब महारास-प्रारम्भ हुआ, राधारानी और श्रीकृष्ण के रास का समय आया तो शुकदेवजी कहते हैं कि ऐसी-वैसी रातें नहीं थीं, वह तो 'ता रात्री:' 'ता' बहुवचन है, जितनी सुंदर-सुंदर रात्रियाँ थीं, वह सब इकट्ठा होकर आयीं कि न तो जाड़ा लगे, न गर्मी लगे, न थकान लगे। सभी रातों में से अच्छी-अच्छी बातें 'विशेषताएँ' आयीं और वहाँ पर श्रीकृष्ण खड़े हो जाते हैं **'शरदोत्फुल्लमल्लिका:'** मल्लिका कहते हैं बेला को, कार्तिक में बेला नहीं खिलती है, वह तो गर्मियों की रात में खिलती है, उसकी बड़ी ही तीव्र सुगंध होती है, जो चारों ओर दूर तक फैल जाती है लेकिन वहाँ बेला के फूल इसलिए खिल रहे हैं क्योंकि सब रातें आ गई हैं। तो वह ऐसी दिव्य रात्रि थी जिसमें बहुत से बेला के फूल खिल रहे थे। 'वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे' उन सब रातों को देखकर के श्रीकृष्ण ने अपने मन में विचार किया कि चलो, रास करेंगे, रास खेलेंगे, लेकिन रास खेलेंगे कैसे? क्योंकि रासेश्वरी के आश्रय के बिना तो रास हो ही नहीं सकता। इसीलिये शुकदेवजी ने 'योगमायामुपाश्रित:' कहा। आचार्यों ने योगमाया को 'श्रीजी' का ही स्वरूप बताया है, ये सब स्वरूप शक्ति श्रीजी का ही अंश हैं। 'उपाश्रित' माने श्रीकृष्ण ने जाकर के श्रीराधारानी का सहारा लिया।'उप' माने पास में जाकर के सहारा लिया क्योंकि रस की ईश्वरी यही हैं, इनके बिना कुछ काम नहीं चल सकता। सहारा कैसे लिया? महात्मा लोग कहते हैं कि पहले वंशी में राधा-राधा नाम सिद्ध किया।

'जगौ कलं वाम द्रशांम नोहरम्।' (भागवत १०/२९/३)

इसमें आचार्यजन कहते हैं कि क्लीं (कामबीज)-'श्रीजी के नाम' को वंशी में सिद्ध किया और वहाँ पर बैठकर के सबसे पहले राधारानी को बुलाया है, आह्वाहन करते हैं। 'आह्वाहन' माने जैसे किसी देवता का पूजन करना है तो पहले आह्वाहन किया जाता है कि आप यहाँ पधारिये, उनके लिए आसन दिया जाता है; वैसे ही रास के पहले श्रीकृष्ण ने श्रीराधारानी का आह्वाहन किया (श्रीजी का आश्रय लिया)-

हे राधे ! वृषभानुभूप तनये ! हे पूर्णचंद्रानने !

पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख-कंठ-कान्ति वाली हे राधे ! आओ।

हे कान्ते ! कमनीय कोकिलरवे ! वृन्दावनाधीश्वरि !

कान्ते 'क' कहते हैं सुख को, सुख की अन्तिम सीमा आप हैं। 'कमनीय-कोकिलरवे' कोकिला तो गाती है किन्तु उससे भी सुंदर आप गाने वाली हैं, श्रीराधे ! आपका गला कोयल से भी अधिक मीठा है। 'वृन्दावनाधीश्वरि' यहाँ पर श्रीकृष्ण ने राधारानी को 'अधीश्वरि' (महारानी) मान लिया।

इस अष्टक के अन्त में कहते हैं

'मत्स्वान्ताब्ज वरासने, विषमुदा मां दीनमानन्दय।'

आप ! हमारे इस हृदय-कमल पर आकर बैठिये, विराजिए। 'वरासने' हमारा हृदय-कमल बहुत सुंदर आसन है, आपके बैठने लायक है। 'मां दीनमानन्दय' मुझ दीन को आनन्दित कीजिए।

ये प्रमाण इसलिए दिया क्योंकि रास में शुकदेवजी कहते हैं

रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखण्डित:।
कामिनां दर्शयन् दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम्॥ (भागवत १०/३०/३५)

'दैन्यं' - कृष्ण ने दीनता दिखाई राधारानी के सामने, छोटे बने, उनका आश्रय लिया। श्रीश्यामसुन्दर द्वारा श्रीराधारानी का आश्रय लेने पर भी वे मान करती हैं, रूठती हैं। तो ये दिखाया कि श्रीजी के मान करने पर भी श्रीकृष्ण दैन्य दिखा रहे हैं, उनको मना रहे हैं। 'स्त्रीणां चैव दुरात्मताम्' - 'दुरात्मताम्' का मतलब हम लोगों जैसे दुरात्मा नहीं समझना चाहिए। आचार्यों ने 'दुरात्मताम्' का अर्थ किया है 'दूरे आत्मा यस्य स: दुरात्मता।' जिस क्रिया से आत्मा (अपना प्रियतम) दूर चला जाये यानि 'मान'। 'दौरात्म्य' माने मान। (राधारानी साधारण स्त्री तो हैं नहीं कि उनको दुरात्मा कहा जाय, ऐसा तो कदापि नहीं हो सकता। इसलिए इसका अर्थ आचार्यजन ही कर सकते हैं हम लोग इसका अर्थ नहीं कर सकते, समझ भी नहीं सकते हैं।) शुकदेवजी ने जो लिखा है कि 'रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखण्डित:' इसमें 'अपि' शब्द लगा दिया, इसका भाव तो बहुत बड़ा 'गहरा-गंभीर' है कि वह आत्माराम हैं, उनमें कोई कमी नहीं है, वे भगवान् हैं लेकिन आत्माराम होते हुए भी वे दीन बन रहे हैं, क्यों? वस्तु-गौरव के कारण। वस्तु-गौरव क्या है? श्रीराधारानी ही वस्तु-गौरव हैं, यही हैं रस, यही हैं प्रेम। इसीलिये रसमय लीलाओं का नाम हुआ-रास। 'रास' अर्थात् 'रसानां समूह:' जहाँ रसों का समूह है, वहाँ कोई चीज ऐसी नहीं है जो गड़बड़ है, हर वस्तु रसमयी है। 'श्रीराधारानी रूठती हैं' वह भी रस है, 'श्रीकृष्ण मनाते हैं' वह भी रस है, वह प्रणयमान है, कलहमान नहीं है, क्योंकि वहाँ ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो रास के रस को फीका कर दे, वहाँ हर वस्तु रस है, वहाँ मिलन भी रस है, 'गोपियाँ श्रीकृष्ण को ढूँढ़ती हैं' वह भी रस है। श्रृंगाररस द्विदलात्मक होता है। जैसे - एक चना में दो दाल होती है, दोनों दाल चना है, एक दाल को चना नहीं कह सकते हैं, दोनों दाल मिलकरके एक चना बनता है। वैसे ही श्रृंगाररस में संयोग और वियोग दो दल हैं, इसको द्विदलात्मक श्रृंगाररस कहा गया है, इसलिए श्रृंगार को 'रसराज' माना गया है ये पूर्ण है, इसमें संयोग भी रस है, वियोग भी रस है, सम्प्रलम्भ भी है, विप्रलम्भ भी है, सब कुछ रस है। ऐसी 'श्रीराधिकारानी' जिनकी उपासना आत्माराम भी करते हैं। इसीलिये गह्वरवन में जब श्रीजी आती हैं तो दूर से उनके नूपुरों की ध्वनि को सुनकरके, दूर से उनके संगीत को सुनकर के, दूर से उनके अंचल की सुगंध को पाकर के श्रीकृष्ण धन्यातिधन्य 'परमकृतार्थ' हो जाते हैं।

क्रमश....

धाम की दुष्प्रवेश-महिमा

श्री बाबा महाराज के प्रवचन धाम-महिमा (०१/०५/२००६) से संग्रहीत

संकलनकर्त्री/लेखिका - साध्वी सुगीताजी, दीदी माँ गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा

धाम की त्रिरूपता में एक तो नित्य धाम (जो अवतार लेता है), दूसरा - अवतरित धाम (जहाँ अवतार होता है), तीसरा - अधिभूत रूप (धाम का भौतिक स्वरूप), ये तीनों एक ही हैं। इन तीनों में एकता की स्थापना करना ही उपासना है। जो अधिभूत है, वही अधिदैव है, वही उसका नित्य स्वरूप भी है, इसको अध्यात्म भी कह सकते हैं। अधिभूत तो चोर, बदमाश, पापी, बहिर्मुख, आस्तिक-नास्तिक आदि सबको दिखाई पड़ता है यहाँ चोर भी रहते हैं, बदमाश भी रहते हैं, हत्यारे भी रहते हैं किन्तु इस अधिभूत में और संसार के अन्य अधिभूतों में अंतर है, इसको ऐसा नहीं समझना चाहिए जैसे कि बम्बई आदि अधिभूत (भौतिक रूप) हैं, उसमें और इसमें बहुत बड़ा अन्तर है, वह अंतर समझने के लिए ही सत्संग किया जाता है। जैसे - गंगा का पानी भी पानी ही है किन्तु उस पानी में कोई एक ऐसी शक्ति अन्तर्निहित है जिसको समझने के लिए शास्त्र हैं और कोई दूसरा उपाय नहीं है। उसी तरह से धाम का अधिभूत अन्य सांसारिक अधिभूतों से पृथक होता है। इस (अधिभूतधाम) में एक ऐसी शक्ति है जो यहाँ आये हुए जीव को कभी न कभी, चाहे लाख जन्म बाद, चाहे करोड़ों जन्म बाद प्रभु की ओर ले जाएगी। ये बात कैसे समझ में आती है ? इसका प्रमाण शास्त्र है, शास्त्र से ही बहुत-सी बातें समझ में आती हैं, विशेष करके परमार्थ-परलोक की बातें शास्त्र (शब्द-प्रमाण) से ही जानी जा सकती हैं, वहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं चल सकता है, न अनुमान प्रमाण चलता है, अन्य कोई प्रमाण नहीं चलता वहाँ। शास्त्र कहता है इसलिए मानना चाहिए और मानना पड़ता है क्योंकि परलोक किसी ने देखा नहीं। कर्म, कर्मफल, दैव ये सब प्रत्यक्ष प्रमाण की बातें नहीं हैं, इन्हें शास्त्र कहता है। अधिभूतधाम के बारे में भी शास्त्र-कथन है

कवनेहुँ जन्म अवध बस जोई । राम परायन सो परि होई॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड -९७)

किसी जन्म में भी जो इस धाम में रहा, वह कभी न कभी भगवान् के पास पहुँचेगा, भगवत्परायणता आ जायेगी। इसलिए संसार के अन्य अधिभूत देशों से इस अधिभूतधाम की अलग विशेषता है।

श्रीराधासुधानिधि में

यद् राधापदकिङ्करी कृतहृदां सम्यग्भवेद् गोचरं ध्येयं नैव कदापि यद् धृदि विना तस्याः कृपास्पर्शतः।

यत्प्रेमामृतसिन्धुसार रसदं पापैकभाजामपि तद् वृन्दावनदुष्प्रवेशमहिमाश्चर्यं हृदिस्फूर्जतु।

(राधासुधानिधि२६५)

वृन्दावनधाम की एक अद्भुत, आश्चर्यजनक महिमा है। यहाँ पर रसिकों ने धाम के तीन अधिकारी (अधिकारित्रय) बताये हैं (१) "यद् राधापदकिङ्करी कृतहृदां सम्यग्भवेद् गोचरं" पहले प्रकार के बड़भागी जन 'श्रीजी की सहचरीभाव-प्राप्त सिद्ध महापुरुष होते हैं, जिनकी श्रीराधिकारानी की सेवा के लिए भावना सिद्ध हो चुकी है, किंकरीवपु-प्राप्त इन सेवकों को धाम का दिव्य (चिन्मय) स्वरूप सम्यक् (अच्छी तरह) दिखाई पड़ता है।

(२) दूसरे वे होते हैं जिनको अभी श्रीजी के कैंकर्य की सिद्धि नहीं हुई है और हृदय में ध्यान करने बैठते हैं तो ध्यान में थोड़ी-थोड़ी झलक आती है, कृपात्र हैं, श्रीजी की विशेष कृपात्र है उन पर। **"ध्येयं नैव कदापि यद् धृदि विना तस्याः कृपास्पर्शतः।"** उनकी कृपा के स्पर्श के बिना ध्यान में भी हमें दिखाई नहीं पड़ेगा, आँख बंद करेंगे तो लड्डू, पेड़ा और भोग ये ही सब सामने आता है। (३) अब बाकी जो तीसरे प्रकार (थर्ड क्लास) के हम जैसे लोग हैं, वे कहाँ जायेंगे ? सामने तो दिखाई नहीं पड़ रहा, ध्यान में भी नहीं आता। गाओ, बजाओ, खूब नाच कूद लो लेकिन ध्यान आदि में कुछ नहीं है। तो तीसरी कोटि में यह कहा गया कि उनको भी निराश नहीं होना चाहिए क्योंकि **"यत्प्रेमामृतसिन्धुसार रसदं पापैकभाजामपि"** भले ही तुम सर्वोच्च कोटि के पापी (महापापी, महापराधी) हो, 'पापैकभाजाम्' जिन्होंने केवल पाप ही पाप किया है, अच्छा काम तो कभी किया ही नहीं, 'पापैक' एकमात्र पाप, कभी भूल-चूक में भी अच्छा काम नहीं बना, तो ऐसे जो 'पापैकभाजाम्' हैं, उनको भी धाम 'प्रेमामृतसिन्धुसार का रस' दे देता है। बोले- "अच्छा!! ऐसा है, यह तो एक बहुत आश्चर्य की बात हुई।" तो कहा हाँ, इस महिमा को दुष्प्रवेश महिमा कहा गया है- **"तद् वृन्दावनदुष्प्रवेशमहिमाश्चर्यं हृदिस्फूर्जतु॥"** यहाँ प्रवेश करना कठिन है, यहाँ आस्था रखना कठिन है और इस आस्था (श्रद्धा) पर पहुँचने के लिये ही सत्संग किया जाता है और कोई प्रयोजन नहीं है। धाम की महिमा अगर हमारे हृदय में आ जाये 'हृदि स्फूर्जतु' (जैसे - ज्योति का झरना फूटने लग जाये तो इसे 'स्फूर्जन' कहते हैं।) अतः जो तृतीय श्रेणी (थर्ड क्लास) के हम जैसे लोग 'पापैकभाजाम्' हैं, उनको भी धाम महाराज की दया से 'प्रेमामृतसिन्धुसार' मिलता

है, तो ये वही बात आ गयी जो रामायण में कही गई है– **"कवनेहुँ जन्म अवध बस जोई । राम परायन सो परि होई ॥"** कभी किसी भी जन्म में श्रीजी की कृपा से किसी को धाम में किसी तरह से (चाहे नौकरी के बहाने, रिश्तेदारीके बहाने) वास मिला, धाम का स्पर्श हुआ तो उसको कृपा मिलती है, उस बड़भागी जीव का अवश्य कल्याण होता है। यह इस धाम की दुष्प्रवेश महिमा है किन्तु धाम में इतनी आस्था होना कठिन है। यह आस्था होती कैसे है? इसका मूल है – सत्संग। जो धामनिष्ठ महापुरुष हैं, धाम के ज्ञाता हैं, तत्त्व के ज्ञाता हैं, उनके उपदेशामृत का निरंतर श्रवण करते रहना चाहिये, इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है। श्रद्धा का जन्म एकमात्र सत्संग से होता है और कोई दूसरा उपाय न था, न है, न होगा।

सतांप्रसङ्गान्ममवीर्यसंविदो भवन्तिहृत्कर्णरसायनाःकथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥

(भागवत ३/२५/२५)

कपिल भगवान् कहते हैं कि जब मनुष्य संतों का संसर्ग करता है तो वहाँ **मम वीर्यसंविदो** भगवान् की महिमा और पराक्रम से सम्बन्धित कथायें सुनता है, केवल मात्र उस कथा के श्रवण से ही **'भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः'** हृदय में, कानों में अर्थात शरीर, मन, बुद्धि में वह रसायन अथवा रस प्रवेश करता है। भगवद्कथा सुनने से ही तो ठाकुरजी हृदय में प्रवेश करते हैं, ये बात भागवत में अनेक जगह कही गयी है

श्रृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम्॥

(भागवत १/२/१७)

'भगवान्' कथा सुनने वाले के हृदय में कान के द्वारा प्रवेश कर उसके समस्त विकारों को नष्ट कर देते हैं।

यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति॥

(भा.३/५/११)

भगवान् कानों के द्वारा हृदय में प्रविष्ट होते हैं और भीतर जा करके जीव की आसक्तियों को काट डालते हैं, जिससे कि उसका इस संसार में बार-बार जन्म-मरण नहीं होता है। धाम का जो अधिभूत स्वरुप हमें दिखाई पड़ रहा है, इसमें श्रद्धा उत्पन्न हो जाये इसीलिए सत्संग किया जाता है, बिना सत्संग के धाम में निष्ठा होने का और कोई दूसरा उपाय नहीं है। कपिल भगवान् ने कहा है कि श्रद्धा, रति, सिद्धाभक्ति, साधनभक्ति आदि की प्राप्ति भी सत्संग के द्वारा होती है। जिस समय मनुष्य का सत्संग छूट जाता है, उस समय ये सब चीजें नष्ट हो जाती हैं। **'सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो'** जो भगवद्कथा की निरंतरता है, उसी से भक्ति लता बढ़ती है अन्यथा नहीं बढ़ती है। भक्तमाल में भी ऐसा कहा गया है कि जो भक्ति रूपी पौधा है, उसे सदा श्रवण रूपी जल से सींचा जाय। यह नाभाजी का मत है कि जो भक्ति रूपी लता है, उसको श्रवण रूपी जल से सींचिये तब तो यह बढ़ेगी, नहीं तो सूख जाएगी। इसलिए बिना सत्संग के इस अधिभूत धाम में श्रद्धा होना असंभव है। इस धाम के प्रति इतनी श्रद्धा रखी जाये, जैसा कि व्यासजी कहते हैं–**'वृन्दावन में मंजुल मरिबो'।**

तुमसे कुछ नहीं होता है तो धाम में आकर प्राण छोड़ दो श्रद्धा के साथ। कपिल भगवान् ने कहा– **'श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति।'** केवल सत्संग से ही श्रद्धा की वृद्धि होती है, नहीं तो समाप्त हो जाती है। यह निश्चित बात है कि सत्संग हटा और श्रद्धा-भक्ति का प्रवाह (करेंट) घटा। ये जो अधिभूत धाम है, इसमें ही ऐसी दिव्य शक्ति है जो केवल सत्संग से ही अनुभव में आती है। गिरिराजजी की परिक्रमा करने हजारों-लाखों लोग जाते हैं, क्यों? क्योंकि उनको अन्य परिक्रमा करने वाले भक्तों का संग प्राप्त हुआ। यद्यपि भावनाओं की तीव्रता जैसी उपासक में होनी चाहिए, वैसी भाव प्रगाढ़ता इन परिक्रमा लगाने वालों में तो नहीं होती है लेकिन कुछ न कुछ भावना तो होती ही है, तभी लोग धाम के स्थलों की परिक्रमा लगाने जाते हैं लेकिन इनको धाम के दिव्य रूप का दर्शन नहीं होता है, वह सतत् सत्संग से ही सम्भव होगा। बरसाने का दिव्य रूप क्या है ? इसको रंगीली होली के दिन श्रीजी के मंदिर में गाया जाता है –

अति सरस बस्यौ बरसाने जू।
राजत रमणीक रवानो जू। जहाँ मणिमय मंदिर सोहै जू।

बरसाने में वृषभानु भवन मणिमय है, जो चिन्मयी मणियों से निर्मित है। जिसकी उपमा त्रिलोकी में कहीं नहीं है, सूर्य, चन्द्रमा भी उसके सामने कुछ नहीं हैं।

उपमा को रवि शशि को है जू।
वृषभानु गोप जहाँ राजै जू॥

इस पद में जिस मणिमय भवन का वर्णन किया गया है, वह अधिभूत धाम के भीतर जो धाम का अधिदैव रूप है उसका वर्णन है लेकिन वह सबको दिखाई नहीं पड़ता है।

'ध्येयं नैव कदापि यद् धृदि विना तस्याः कृपास्पर्शतः।'

लेकिन इस अधिभूत धाम में श्रद्धा और आस्था करने से ही अधिदैव स्वरूप की प्राप्ति होती है, ये सभी ने बताया है और यही यहाँ की विलक्षणता है। यही नहीं, सैकड़ों उदाहरण इसके प्रमाण हैं, जैसे – भागवत में इसी अधिभूत वृन्दावन के आधार पर 'अधिदैव वृन्दावन' का वर्णन किया गया है

श्रीमद्भागवतमाहात्म्य में नारदजी और भक्ति का संवाद है, वहाँ भक्ति ने नारदजी से कहा कि मैं द्रविड़ देश में उत्पन्न हुई और वहाँ से कर्नाटक गयी, वहाँ से होते हुए गुजरात गयी जहाँ मुझे

वृद्धावस्था ने ग्रसित कर लिया फिर वहाँ से चलकर मैं वृन्दावन आयी तो यहाँ आकर मैं युवावस्था को प्राप्त हो गयी लेकिन मेरे दोनों पुत्र ज्ञान और वैराग्य वृद्ध हो गये। ये 'अधिभूत वृन्दावन' का वर्णन है किन्तु वृन्दावन के 'सम्यक् अधिदैव रूप' की प्राप्ति के लिए जब भक्ति महारानी ने महापुरुषों का संग करके उनके श्रीमुख से श्रीमद्भागवत का श्रवण किया तब यह चमत्कार हुआ कि उनके वृद्ध पुत्र 'ज्ञान, वैराग्य' युवक हो गये तथा भगवान् प्रकट हुए और महासंकीर्तन हुआ। इसीलिये सत्संग की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि उससे श्रद्धा और भक्ति बढ़ती रहती है। धाम के तीन स्वरूप होते हैं - एक तो नित्य धाम है, जिसके गोलोक, नित्य वृन्दावन आदि अनेक नाम हैं। दूसरा स्वरूप है कि जब धाम अवतार लेता है, इस पृथ्वी पर आता है, उसे 'अवतरित धाम' कहते हैं। तीसरा स्वरूप है कि जो यह भौतिक रूप दिखाई पड़ता है, इसे 'अधिभूत धाम' कहते हैं, यहीं पर नित्यधाम अवतार लेता है। जब भगवान् यहाँ अवतार लेते है तो धाम भी यहाँ अवतरित होता है, लेकिन धाम के इन तीनों स्वरूपों में अंतर है - नित्यधाम में तो प्राकृत हवा जा ही नहीं सकती। जो अवतरित धाम (अधिदैव) है, इसमें मिश्रण रहता है, इसमें जरासंध, कालयवन आदि हमला करने आये क्योंकि बाहर से यहाँ आने का रास्ता भी है परन्तु इसमें चिन्मयता भी है क्योंकि सौ करोड़ गोपियाँ एक छोटे से स्थल में रास करतीं हैं। इस प्रकार इसमें 'चिन्मयता और बाहरी अधिभूत' दोनों का ही मिश्रण रहता है और तीसरा स्वरूप यह है कि जब भगवान् और उनके परिकर यहाँ से अवतारलीला के बाद चले जाते हैं तो केवल अधिभूतरूप ही रह जाता है। अब हमारे सामने कृष्णावतार तो है ही नहीं, वह तो चला ही गया परन्तु धाम का अधिभूत रूप हमारे सामने है। इस अधिभूत रूप में आस्था और श्रद्धा केवल सत्संग से ही बढ़ती है और कोई दूसरा रास्ता नहीं है और जिस समय जीव सत्संग से अलग हो जाता है, उस समय उसकी अधिभूतधाम में भी श्रद्धा नष्ट हो जाती है और प्राकृतभाव आ जाता है, ये ध्यान देने की बात है क्योंकि हमारे गुरुदेव कहते थे कि प्रारम्भ में जब कोई ब्रज में आता है तो ब्रजवासियों को सम्मान से ब्रजवासी जी और ब्रजमाई कहता है, फिर साल, दो साल बाद माला फेरने के बाद ब्रजवासियों के प्रति अभाव (प्राकृत भाव) करने लग जाते हैं, इस तरह से उनका पतन हो जाता है। जबकि इस धाम में आने पर भावना बढ़नी चाहिए। भक्ति या प्रेम क्या है? **"गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षण वर्धमानं।"** (नारदभक्तिसूत्र) गुणरहित, कामनारहित भाव का प्रतिक्षण बढ़ना ही भक्ति है।

हमारे गुरुदेव प्रायः गहवरवन का दर्शन करने आया करते थे। एकबार जब वह गहवरवन में आये और चबूतरे पर जप करने के लिए बैठे तो वहाँ फर्श पर बन्दर का मल पड़ा था, यह देखकर हमलोग बुहारी लेकर उसे साफ करने के लिए दौड़े तब तक उन्होंने अपने हाथ से ही उस मल को हटाकर साफ कर दिया। इसी प्रकार गह्वरवन में मौनी बाबा रहते थे। एकबार हमारी माताजी उनको खीर देने के लिए गयीं तो उनकी कुटिया में कुत्ता बर्तन को चाट रहा था, माता जी द्वारा दी गयी खीर को उन्होंने उसी बर्तन में डालने को कहा, तो माता जी ने कहा कि इस बर्तन को तो कुत्ता चाट रहा है। मौनी बाबा बोले कि इस कुत्ते का जन्म ब्रज में हुआ है इसलिए यह हमसे श्रेष्ठ है, ऐसा कहकर उन्होंने कुत्ते के चाटे हुए उस बर्तन में खीर डलवाकर उसे खा लिया। उनके अन्दर ऐसी विलक्षण भावना थी ब्रज के चराचर जीवों के प्रति, इसी भावशक्ति का चमत्कार हुआ कि उनके शरीर से स्वतः अग्नि प्रकट हुयी। इन महापुरुषों के अंदर ब्रज के प्रति एक विशेष प्रेम था। हमलोगों के हृदय में भाव की वृद्धि नहीं होती है, भाव-वृद्धि के लिये ही सत्संग किया जाता है। दुःख की बात यही है कि हमलोगों के मन में प्राकृतभाव आने लग जाता है। ऊपर से भले ही कोई पाठ कर रहा है, माला कर रहा है, कुछ साधन कर रहा है, वह सब प्राकृत भाव के कारण व्यर्थ हो जाता है। वस्तुतः भाव ही तो भक्ति है। हमारे गुरुदेव कहा करते थे कि चाहे फटा हुआ टाट का कपड़ा है किन्तु यदि गीला है और उसे जमीन पर रखा जाए तो जमीन गीली हो जायेगी, इसके विपरीत चाहे दस हजार रुपये प्रति गज का कीमती मखमल का सूखा कपड़ा है, उसे कितना ही रगड़ो किन्तु जमीन गीली नहीं होगी। इसी प्रकार जिसके अन्दर भाव है, वह चाहे पूर्णतया निरक्षर ही क्यों न हो, उसके सान्निध्य से हृदय में भावोत्पत्ति हो जाएगी, दूसरी ओर भावहीन शुष्क व्यक्ति चाहे कितना ही उत्तम वैष्णववेष धारण कर ले, विद्वान हो जाये लेकिन जीवन भर उसका संग करने से भी कोई लाभ नहीं होगा। हमारे गुरु महाराज (बाबा श्रीप्रियाशरणजीमहाराज) का धाम के प्रति, यहाँ की लताओं के प्रति अत्यंत उत्कृष्ट भाव था। जब वह प्रेम सरोवर पर रहते थे तो जप करने के लिए अपने कमरे से बाहर आकर लताओं के नीचे बैठा करते थे, उनका भाव था कि ब्रज की लताएँ देवी हैं, वे उन्हें लता देवी कहा करते थे। केवल लताओं का दर्शन करने के लिए ही प्रेम सरोवर से वह पैदल चलकर गह्वरवन में आया करते थे। उन्होंने अपने अंतिम समय में हमको गोवर्धन में बुलाया था, जब मैं उनके पास पहुँचा तो उन्होंने मेरे कान में कुछ कहा, वहाँ रहने वाले अन्य किसी भक्त से नहीं कहा। वह बोले कि मैंने बरसाने में प्रेम सरोवर पर रहकर दीर्घकाल तक भजन किया है। अब तुम बरसाने की विभिन्न लीला-स्थलियों की थोड़ी-थोड़ी रज लाकर मुझे दे दो। मैं समझ गया कि अब ये इस संसार से विदा होने वाले हैं, महापुरुष लोग अपने मुख से ऐसी बातें स्पष्ट नहीं कहते हैं। श्रीगुरुदेवमहाराज की आज्ञानुसार मैंने बरसाने की लीला-स्थलियों की रज एकत्रित की और एक पुड़िया में रज रखकर उनके पास ले गया, उन्होंने उसे चुपचाप लेकर रख लिया और किसी को इसके बारे में नहीं बताया। ऐसी उनकी ब्रजरज में गूढ़तम प्रेमनिष्ठा थी।

क्रमशः...

सर्वमंगल मूल भगवन्नाम

श्री बाबा महाराज के सत्संग "नाम महिमा" (१७/०५/२०१०) से संकलित

संकलनकर्त्री/लेखिका - साध्वी श्यामश्रीजी, दीदी माँ गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा

गणेशजी भगवन्नाम की महिमा जानते हैं, इसीलिये सबसे पहले पूजे जाते हैं। एकबार की बात है कि शिव-पुत्रों गणेश और कार्तिकेय के मध्य यह विचार हुआ कि दोनों में कौन बड़ा है? शिवजी गणेशजी को बड़ा बनाना चाहते थे। कार्तिकेयजी ने कहा कि हम बड़े भाई हैं, इसलिए यह अधिकार हमको मिलना चाहिए, शिवजी ने उन्हें ब्रह्माजी के पास भेज दिया। इसी कथा को अन्य पुराणों में इस प्रकार लिखा है कि ब्रह्माजी ने देवताओं से पूछा कि आप लोगों में सबसे बड़ा कौन है? (दोनों कथाएँ सही हैं।) ब्रह्माजी ने कहा कि जो देवता तीनों लोकों की परिक्रमा करके सबसे पहले आएगा, वही सबसे बड़ा माना जाएगा। सभी देवता अपने-अपने वाहनों पर चढ़े। गणेशजी का वाहन है चूहा, चूहा बेचारा कितना चलेगा? गणेशजी चूहे पर बैठकर जा रहे थे, चूहा मुश्किल से २-४ कदम आगे चला होगा, तब तक अन्य देवता अपने वाहनों पर बैठकर सैकड़ों मील आगे चले गये। उसी समय रास्ते में गणेशजी को नारदजी मिल गये, उन्होंने पूछा- अरे लम्बोदर ! तुम उदास क्यों हो ? गणेश जी बोले यह जो देवताओं की दौड़- प्रतियोगिता हो रही है, इसमें सबसे पीछे मैं हूँ, मुझसे पीछे कोई नहीं है। नारदजी बोले तुम घबराओ नहीं, अन्त में तुम ही सबसे आगे रहोगे। पृथ्वी पर 'राम नाम' लिख लो और उसकी परिक्रमा लगाकर चले जाओ। गणेशजी ने 'राम नाम' लिखकर परिक्रमा लगाई, एक सेकेण्ड में परिक्रमा लग गई और गणेशजी ब्रह्माजी के पास पहुँच गये। अब जितने देवता अपने वाहनों पर दौड़ रहे थे, उन्हें अपने आगे चूहे के पैरों के निशान दिखाई पड़ रहे थे, वे बोल- "अरे ! चूहा तो हमसे आगे चला गया।" वे अपने वाहनों को और जोर से दौड़ाने लगे और कहने लगे- "अरे ! चूहा हमसे आगे चला गया और जोर से दौड़ो।" वे जितना भी तेज दौड़ते, चूहे के टाँग के चिह्न उन्हें अपने आगे दिखाई पड़ते थे। अन्त में सब देवता ब्रह्माजी के पास पहुँचे और देखा कि गणेशजी वहाँ पहले से बैठे हुए हैं। इसीलिये गोस्वामी जी ने चौपाई में कहा है

"महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥"

पद्मपुराण में यही कथा दूसरे ढंग से लिखी है, व्यासजी ने यह कथा संजय से कही थी

पार्वतीजी के दो पुत्र हुए कार्तिकेय (स्कन्द) और गणेश। देवताओं की पार्वतीजी में श्रद्धा हुई और उन्होंने अमृत से तैयार करके एक दिव्य लड्डू पार्वतीजी के हाथ में दिया। वह लड्डू देखकर दोनों बालक माँ से माँगने लगे। कार्तिकेय बोले- "माँ! मुझे लड्डू दो।" गणेशजी बोले- "माँ! हमें दो।" तब पार्वतीजी बोलीं कि पहले मैं तुम्हें इस लड्डू की महिमा बताती हूँ, इसे सूँघने से ही तुम अमर हो जाओगे, ग्रहण करना तो दूर रहा। इसे जो सूँघ लेगा, वह समस्त शास्त्रों का ज्ञाता, तंत्रों में प्रवीण, लेखक, चित्रकार, विद्वान, ज्ञानी, सर्वज्ञ हो जाएगा ऐसा लड्डू है। इसलिए गणेशजी के बारे में तुलसीदासजी ने गाया है

मोदक प्रिय, मुद मंगल दाता। विद्या वारिधि, बुद्धि बिधाता॥

(विनयपत्रिका -१)

पार्वतीजी बोलीं- "पुत्रो ! तुम दोनों में जो अपनी श्रेष्ठता साबित कर देगा, उसी को मैं यह लड्डू दूँगी। तुम दोनों मेरे पुत्र हो, आयु से कोई बड़ा नहीं होता, यही तुम्हारे पिता की भी सम्मति है।" माँ की बात सुनकर कार्तिकेय जी अपने वाहन मयूर पर सवार होकर बोले कि मैं अभी त्रिलोकी के सभी तीर्थों में स्नान करके आता हूँ और उन्होंने एक मुहूर्त (४५ मिनट) में सब तीर्थों का स्नान कर लिया। गणेश जी ने केवल दस सेकेण्ड में ही माता-पिता की परिक्रमा लगा लिया और उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये, स्तुति करने लगे-

"सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता।
मातरं पितरं तस्मात् सर्व यत्नेन पूजयेत्॥"

श्लोक का भाव यह है कि समस्त तीर्थ माता में हैं तथा समस्त देव पिता में विद्यमान हैं। इसलिए सर्वभाव से माता-पिता को पूजना चाहिए। शिवजी बोले कि त्रिलोकी के समस्त तीर्थ-स्नान आदि माता-पिता के पूजन के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हैं। पार्वतीजी ने कहा कि यह गणेश तो सैकड़ों पुत्रों और सैकड़ों गणों से भी बढ़कर है, इसलिए मैं मोदक इसी को दूँगी और इसी की पूजा सर्वप्रथम होगी।

'नाम-महिमा' का यह विषय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, इसीलिये गोस्वामीजी ने श्रीरामचरितमानस में रामकथा कहने से पहले 'नाम-महिमा' का वर्णन किया है और यहाँ तक कहा है कि 'नाम' भगवान् से भी बड़ा है, इसके कई कारण उन्होंने बताये हैं

बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो । अगुन अनूपम गुन निधान सो॥

(रा.मा.बा.- १९)

संस्कृत में एक प्रत्यय होता है- 'मयट'। जैसे भगवान् को 'चिन्मय' कहा गया है, तो 'चिद्' शब्द में 'मयट' प्रत्यय लग गया है, जिसका आशय है कि भगवान् केवल 'चिद् ही चिद्' हैं, अचिद् नहीं हैं। इसलिए इस चौपाई **"बिधि हरि हरमय .....** " में 'मयट' प्रत्यय लगाया गया है। यानि ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देव भी रामनाममय (भगवन्नाममय) हैं। 'मयट' प्रत्यय दो प्रकार का होता है

तादात्मक और बाहुल्यमय। (१) पहला प्रत्यय है तादात्मक, जैसे – मिट्टी का घड़ा है, वह केवल मिट्टी से बना है, मिट्टी के अलावा उसमें कुछ नहीं है तो उसे 'मृण्मय' कहा जाएगा, सोने का हार है तो उसे सुवर्णमय कहा जाएगा क्योंकि उसमें सोने के अलावा और कुछ नहीं हैं इसको 'तादात्मक मयट प्रत्यय' कहा जाता है। जब गुण और स्वरूप एक होता है तब 'तादात्मक मयट प्रत्यय' होता है। (२) दूसरा प्रत्यय है बाहुल्यमय, जैसे – कहा गया कि सेना मनुष्यमय है तो सेना और मनुष्य में गुण और स्वरूप भिन्न–भिन्न होते हैं लेकिन चूंकि सेना में मनुष्य बहुत हैं, इसलिए उसमें तादात्म्य नहीं है, केवल मनुष्यों के बाहुल्य के कारण 'मयट' प्रत्यय लग जाता है। 'गुण व स्वरूप' भिन्न, प्रचुर (बहुत ज्यादा) होने से इसे 'बाहुल्यमय (प्रचुरात्मक) प्रत्यय' कहते हैं। अतः यहाँ 'बिधि, हरि और हर' के गुण और स्वरूप भिन्न–भिन्न होने के कारण सब अलग–अलग काम (सृष्टि निर्माण, पालन और संहार) करते हैं। ब्रह्माजी के चार मुख हैं, विष्णुजी की चार भुजा हैं और शंकरजी पंचमुख हैं। इसलिए यहाँ बिधि हरि हरमय ..... में 'प्रचुरात्मक मयट प्रत्यय' है। लगता है इनके गुण और स्वरूप अलग–अलग हैं लेकिन सब 'भगवन्नाम' के ही कारण है। सारी सृष्टि 'भगवान्' से ही बनी है।

अगर भवबन्धन से मुक्त होना चाहते हो तो भगवन्नाम को मान–सम्मान के लिए मत लो, पैसे के लिए मत लो। पद्मपुराण में कहा गया है –

तच्चेद्देहद्रविणवनितालोभपाखण्डमध्ये।
निक्षिप्तं स्यान्न फलजनकं शीघ्रमेवात्र विप्र!॥

(पद्म पुराण २५/२४)

देह की सुख–सुविधा, धन, लोभ और पाखण्ड से नामोच्चारण करने पर वह नामाभास बन जाता है। शास्त्रों में जगह–जगह इस बात को कहा गया है। महापुरुषों के पदों में भी इस 'दम्भ व लोलुप' वृत्ति से नामोच्चारण (कथा–कीर्तन) करने का विरोध किया गया है। (महापुरुषों के पद हमारे लिए मंत्र हैं) जैसे – गोस्वामी तुलसीदास जी का एक प्रसिद्ध पद है, जिसमें उन्होंने अपनी अनुभूति लिखी है कि जब माता जानकीजी ने प्रभु श्रीराम से मेरे लिए सिफारिश की, तब मेरा बिगड़ा काम बना।

कबहुँक अम्ब, अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन–कथा चलाइ॥

हे माँ ! कभी मौका मिल जाए तो प्रभु को मेरी भी याद दिला देना, कोई मेरी करुणकथा चला देना, जिससे उनकी दया मेरे ऊपर भी हो जाये।

दीन, सब अंगहीन, छीन, मलीन, अघी अघाइ।

यह कह देना कि एक प्राणी बड़ा दीन है, सब अंगों से हीन है, जैसे – किसी के हाथ–पाँव आदि सब अंग कट जाएँ, उसी प्रकार वह (दीनहीन तुलसीदास) भी भक्ति के समस्त अंगों (साधनों) से रहित है, न उसमें ज्ञान है, न वैराग्य है, न सदाचार है, न योग है, इसीलिए वह मलिन है, दुर्बल है, पेट भर के उसने खूब पाप किये हैं।

नाम लै भरै उदर एक प्रभु–दासी–दास कहाइ॥

ये याद दिला देना कि वह सबसे बड़ा पाप यह करता है कि उदर–पोषण के लिए आपका नाम लेता है, आपके नाम को उसने धंधा (व्यापार) बना लिया है।

इसीलिए गीता १७/२५ में भगवान् कहते हैं कि जो मोक्षाकांक्षी होता है, वह फल की इच्छा को छोड़कर चलता है। हम जैसे निकृष्ट लोग भगवन्नाम को व्यापार बना लेते हैं, पेट पालने का साधन बना लेते हैं। भगवान् के नाम का हम इतना बड़ा दुरुपयोग कर रहे हैं। गोस्वामीजी कहते हैं कि हे माँ! प्रभु से कहना कि वह इतना बड़ा नीच प्राणी है। तब श्रीरामजी आपसे पूछेंगे कि तुम किसकी सिफारिश करती हो, वह कौन आदमी है, जिसकी आप इतनी हित–कामना कर रही हैं।

बूझिबी सो है कौन, कहिबी नाम दसा जनाइ।

तब आप मेरा नाम बता देना कि वह तुलसीदास है जो सब गड़बड़ काम करता रहता है। जब आप इस तरह मेरा नाम बता कर प्रभु को मेरी दीन दशा सुना दोगी तो मेरा कल्याण हो जायेगा।

सुनत राम कृपालु के, मेरी बिगरिऔ बनि जाइ॥

बस, इतने में ही मेरी बिगड़ी बन जाएगी।

जानकी जगजननि, जन के किये बचन सहाइ।

तुलसीदासजी कहते हैं कि जानकीजी ने मेरी सहायता की, प्रभु से मेरे कल्याण हेतु अनुनय–विनय की।

तरै तुलसीदास भव, तव नाथ–गुन–गन गाइ॥

तब मैंने नाम–गुण गाया फलासक्ति छोड़ करके, तब मेरा कल्याण हो गया। इस पद में नाम के दोनों पक्ष गाये गए हैं। पहला पक्ष ये है कि हम जैसे लोग नाम को पेट पालने का, पैसा कमाने का धंधा बना लेते हैं और अपना नाम हमलोग रामदास, कृष्णदास .... आदि रख लेते हैं, इसको गोस्वामीजी पाप समझते हैं और दूसरा पक्ष यह है कि जब भगवान् की कृपा हो गयी तब पेट पालने का, पैसा कमाने का धंधा छूट गया।

श्रीमद्भगवद्गीता में 'भगवन्नाम की महिमा' बहुत ज्यादा है, इसमें 'श्लोक १७/२३ से १७/२७ तक' नाम–महिमा का निरूपण हुआ है।

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥

(गीता १७/२३)

"ॐ तत्सदिति निर्देशो" 'निर्देश' माने नाम। ब्रह्म का निर्देश भगवान् ने तीन प्रकार का बताया है– ॐ, तत्, सत्। इसी से यज्ञ, वेद, ब्राह्मण और सारे संसार की क्रियाएँ प्रकट हुई हैं। इसीलिये भगवान् कहते हैं कि भगवन्नाम के बिना सब क्रियाएँ व्यर्थ हैं।

क्रमश....

जहाँ राम नहिं काम

(श्री बाबा महाराज के सत्संग से संग्रहीत)

संकलनकर्त्री/लेखिका - साध्वी अचलप्रेमा जी

भगवान् ने गीता में विभूतियोग में स्वयं कहा है कि प्राणियों की चेतना मैं ही हूँ **'भूतानामस्मि चेतना॥'** (गीता १०/२२) मायिक विकारों से लड़कर संसार को जीतने के लिए 'चेतना' के रूप में एक दिव्य शक्ति भगवान् ने हमलोगों को प्रदान की है। चेतना-शक्ति को चुराने वाला काम ही शत्रु है। चेतना नहीं रहती तो मनुष्य काम से हार जाता है। जब चेतना चली जाती है तब मृत्यु तुल्य हो जाता है तो फिर क्या लड़ेगा, क्या किसी को जीतेगा? यही बात भगवान् ने भागवतजी में कही है -

विषयेषु गुणाध्यासात् पुंसः सङ्गस्ततो भवेत् ।
सङ्गात्तत्र भवेत् कामः कामादेव कलिर्नृणाम् ॥
कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्तते ।
तमसा ग्रस्यते पुंसश्चेतना व्यापिनी द्रुतम् ॥
तया विरहितः साधो जन्तुः शून्याय कल्पते ।
ततोऽस्य स्वार्थविभ्रंशो मूर्च्छितस्य मृतस्य च ॥

(श्रीमद्भागवत ११/२१/१९, २०, २१)

मनुष्य का पतन क्रमशः होता है सबसे पहले आसक्ति होती है, आसक्ति से काम, काम से कलि (भेदबुद्धि), उससे क्रोध, क्रोध से तम उत्पन्न होता है, तम से चेतना का नाश और उससे मनुष्य शून्य होकर मुर्दे की तरह हो जाता है। काम का नाश करना है तो आसक्ति का नाश करो। आसक्ति होती है विषयों में गुण- बुद्धि) (गुणाध्यास) होने से। आसक्ति नहीं होगी तो कामना नहीं होगी, काम नहीं हो तो जीव सिद्ध हो जाएगा। किसी ने कहा कि लड्डू बहुत मीठा है तो खाने की इच्छा हो गयी। किसी ने कहा कि ये बहुत ताकत देने वाली भोजन-पद्धति है तो उसमें आसक्ति हो गयी। मनुष्य शराब क्यों पीता है? शराब में स्तम्भन-शक्ति (भोग-शक्ति) होती है, इसलिए शराबी शराब नहीं छोड़ते, चाहे मर भले जाएँ क्योंकि भोग-शक्ति चली जायेगी। गुणों का चिंतन ही आसक्ति कराता है, जैसे - ये स्त्री बड़ी सुन्दर है, सुन्दर रूप देखा तो गुणासक्ति हुई। गुण चिंतन जहाँ भी करेगा वहाँ आसक्ति हो जायेगी। भगवान् ने कहा कि गुण की जगह दोष-चिंतन करो तो आसक्ति चली जायेगी।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्॥

(गीता १३/०८)

भोग से आसक्ति हटाना है तो भोग के दोषों को देखो। स्त्री-शरीर के दोषों को देखो कि ये क्या है? केवल मल-मूत्र का पिंड है, गोरी चमड़ी है तो क्या हुआ, भीतर तो मल-मूत्र भरा है, ऐसा सोचोगे तो आसक्ति चली जायेगी। आसक्ति नहीं रहेगी तो काम नहीं आएगा। काम चला गया तो मनुष्य ईश्वर रूप हो गया। प्रह्लादजी ने कहा

मा मां प्रलोभयोत्पत्त्याऽऽसक्तं कामेषु तैर्वरैः ।
तत्सङ्गभीतो निर्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः॥
विमुञ्चिति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान् ।
तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते॥

(भा.७/१०/२,९)

हे नृसिंह प्रभो! आसक्ति से डर कर मैं आपकी शरण में आया हूँ। मन में स्थित कामनाओं को मनुष्य जब छोड़ देता है तब वह भगवद्स्वरुप हो जाता है। हम जीव क्यों हैं ? क्योंकि संसारी-कामना करते हैं कि पैसा, भोग, मान-सम्मान मिल जाए। इसी में संसारी लोग मर रहे हैं - पैसा लेकर कीर्तन करते हैं, पैसे के लिए ही सेवा करते हैं, नौकरी करते हैं। हमारे मानमंदिर में कोई कीर्तन करने वाला, सेवा करने वाला पैसा नहीं लेता, पैसा चाहने वाला यहाँ नहीं रुक सकता, उसका साहस ही नहीं होता यहाँ रुकने का क्योंकि मन में पैसे की वासना होती है, वह भगा देती है। कामना को छोड़ना कठिन नहीं है, आसक्ति नहीं होगी तो कामना नहीं होगी। आसक्ति क्यों होती है ? गुण-चिंतन (गुणाध्यास) से ऐसा प्रतीत होता है कि भोगों में बड़ा आनंद है, अतः ये गुण-चिंतन ही आसक्ति कराता है। वस्तुतः भोगों में मौत छिपी है, भोगों में दुःख छिपा है ।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५/२२)

जितने भी संस्पर्शज भोग हैं, उनसे दुःख ही पैदा होता है। ये आते हैं और चले जाते हैं, थोड़ी देर के लिए रहते हैं। कोई भी बुद्धिमान आदमी उनमें नहीं रमता। जब यह याद रहेगा तो आसक्ति नहीं होगी। जितने भोग हैं, ये दुःख की योनि हैं। उनसे केवल दुःख या मृत्यु अथवा आपत्ति पैदा होती है। ये बात याद नहीं रहती है इसीलिए आसक्ति होती है। आसक्ति से काम, काम से क्रोध, क्रोध से स्मृतिनाश फिर बुद्धिनाश फिर जीव का नाश हो जाता है। ये नाश की आठ सीढ़ियाँ हैं। जीव एक-एक सीढ़ी नीचे उतरता है। भगवान् बोले कि आसक्ति क्यों होती है? गुणाध्यास से होती है। हमारे मन में ये बात बैठ गयी है कि भोगों में आनंद है इसीलिए काम पैदा होता है। भोग ही अनंत दुःख, कलंक व नरक का कारण है, ये बात बैठ जायेगी मन में तो फिर आसक्ति नहीं होगी, फिर कामना नहीं होगी, ईश्वर रूप हो जायेगा जीव। पैसे में आसक्ति क्यों होती है ? पैसे में पंद्रह दोष बताये गए हैं

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः ।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च॥
एते पञ्चिदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥

(भागवत ११/२३/१८,१९)

पैसा पापी साधु को छुअत लगावै पाप ।
विमुख करै गुरु इष्ट सों उपजावै संताप ।।

(श्रीविहारिनदेवजी)

रसिकों ने लिखा है कि मनुष्य को पैसे का स्पर्श ही पाप लगाता है। स्त्री का पुरुष-दर्शन से ही सतीत्व नष्ट हो जाता है, फिर बात करना, उसके पास जाना तो बहुत ही गलत बात है। सती स्त्री के लिए पुरुष-दर्शन, पुरुष-स्पर्श सब पाप है। हमलोगों को सावधान होकर व्यवस्था से चलना चाहिए। संसार में मेरापन नहीं रखना चाहिए, जितना तुम ममता नहीं रखोगे उतना ही तुम्हारा तेज बढ़ेगा, उतना ही तुम भगवान के पास पहुँचोगे। भगवान् कहते हैं कि मनुष्य ममता के कारण ही हमसे दूर है। जितना प्राणी-पदार्थों में ममता रखोगे, उतना ही भगवान् से दूर हो जाओगे । जड़भरतजी ने दया के कारण हिरन के बच्चे से ममता किया तो उन्हें भगवान् से मिलने में कई जन्मों का चक्कर पड़ गया, इसलिए ममता मनुष्य का नाश कर देती है। ममता हटाने में एक फायदा तो यह है कि व्यवस्था अच्छी बनेगी, दूसरा लाभ है कि समाज सुधरता है ।

यत्सानुबन्धेऽसति देहगेहे ममाहमित्यूढदुराग्रहाणाम् ।
पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां भजेम तत्ते भगवन् पदाब्जम्॥

(भागवत ०३/०५/४३)

मनुष्य शरीर में अपनापन करता है या स्त्री के शरीर में या बेटा में या घर में। 'मेरी स्त्री, मेरा बेटा, मेरा शरीर' यह दुराग्रह अर्थात् दुष्ट आग्रह है। अपना शरीर भी एक दिन जल जाएगा फिर स्त्री का शरीर अपना कैसे हो जाएगा? ये दुष्ट आग्रह है, भगवान् उससे सदा के लिए दूर हैं, कभी नहीं मिलेगें। हम किसी प्राणी के शरीर में ममता रखेंगे तो यद्यपि शरीर के अन्दर भगवान् रहते हैं फिर भी वह हमसे दूर रहेंगें। भगवान् का भजन-कीर्तन इसलिए किया जाता है कि ममता दूर हो जाए। पुराने महात्मा इसीलिए शिष्य नहीं बनाते थे कि शिष्य में ममता होगी तो अवश्य भगवान् से विमुख हो जायेंगे। हमलोग भ्रष्ट हैं क्योंकि संसार में ममता रखते हैं, दूसरों के शरीर में ममता रखते हैं। हम स्वयं भ्रष्ट हैं, पहले हमारा भ्रष्टाचार बंद होगा तो संसार का भ्रष्टाचार बंद होगा। ब्रह्माजी भगवान् से कहते हैं कि जब तक जीव आपके चरण-कमल का आश्रय नहीं लेता तभी तक भय, शोक, लोभ आदि सताते हैं ।

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः॥

(भागवत ०३/०९/०६)

तभी तक भय है जब तक यह मनोवृत्ति रहेगी कि हमारा पैसा चला जाएगा, घर चला जाएगा, मित्र चले जायेंगें तब तक रोना, हार-जीत, लोभ आदि लगे रहेंगे। 'ये मेरा है' ऐसी दुष्टबुद्धि हमलोगों की है। गुरु होने के बाद भी शिष्य में ममता रखते हैं ।

जो गुरु करै शिष्य की आस, श्याम भजन ते भया उदास ।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है

ममता तरुन तमी अँधियारी । राग द्वेष उलूक सुखकारी ।।

(श्रीरामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड - ४७)

ममता मल जरि जाइ ।।

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड -११७)

ममता बहुत बड़ी गंदगी है, जो हमलोगों को प्यारी लगती है, ममता का लोगों से सम्बन्ध है, यही माया है । इसलिए हमलोगों को आगे बढ़ना है तो भ्रष्टाचार पहले हमारे समाज, संगठन से चला जाये। विशुद्ध भक्त लोग हो जाएँ तो एक व्यक्ति लाखों को सुधार देगा। हमलोग साधु बनकर भी पैसा चाहते हैं, मान-सम्मान चाहते हैं इसलिए भ्रष्ट हैं, इस भ्रष्टाचार को बिल्कुल छोड़ देना चाहिए। काम छोड़ना असंभव नहीं है, आसक्ति हटा लो तो काम चला जाएगा।

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥

(गीता २/६२)

काम की माँ कौन है? आसक्ति। आसक्ति गयी तो काम गया। बहुत आसान है काम को जीतना, लोग कठिन कहते हैं, कठिन कुछ भी नहीं है। अपने शरीर में आसक्ति है तो काम पैदा होगा। हम रूप देखना चाहते हैं क्योंकि आँख में आसक्ति है। आसक्ति हटी तो कामना समाप्त हो जाएगी। भगवान ने साफ-साफ कहा कि जब तक आसक्ति बनी है तो काम बना रहेगा और जब काम बना रहेगा तो तुम शून्य हो।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः॥

(गीता ४/२०)

आसक्ति छोड़ दो तो नित्य तृप्ति मिल जायेगी, भूख कभी नहीं लगेगी, भूख लगती है तो मनुष्य भोगों को चाहता है। खूब खा लिया और किसी ने कहा कि और खा लो तो मनुष्य कहेगा कि अब बिल्कुल नहीं, उल्टी हो जायेगी। आसक्ति छूट गयी तो नित्य तृप्ति मिल गयी, फिर भोग की जरुरत नहीं रहेगी । जब भोग की जरूरत होती है तब एक जीव दूसरे जीव का आश्रय पकड़ता है, स्त्री, पुरुष के पास और पुरुष, स्त्री के पास जाता है, क्यों? विषय-वासना की भूख है, इसलिए जीवाश्रय कर रहे हैं। नित्य तृप्ति हो जाए तो मनुष्य किसी का आश्रय नहीं पकड़ेगा। कामनाओं की भूख में आदमी जीवों का आश्रय लेता है। स्त्री क्यों पुरुष के पास जाती है ? क्योंकि कुतिया बन गयी भोग की कामना के कारण। पुरुष क्यों स्त्री के पास जाता है? क्योंकि कुत्ता बन गया मैथुनी आसक्ति के कारण। निष्काम, निराश्रय बन जाए तो फलासक्ति छूट जायेगी, तृप्ति आ जायेगी, भूख नहीं लगेगी। भूख भाग गयी तो जीव निराश्रय हो गया, अब किसी दूसरे जीव का आश्रय नहीं लेगा, नित्यतृप्त (आत्मसंतुष्ट) हो जाएगा। अब उसे पुरुष नहीं चाहिये, स्त्री नहीं चाहिए। फिर वह कर्म करते हुए भी कुछ नहीं करता, नैष्कर्म्य सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। इसलिए तृप्त होकर कार्य करो, भूख लेकर नहीं ।

❑❑❑

गोपाल की गौ-भक्ति

श्री बाबा महाराज के प्रवचन "गौ-महिमा" (३/६/२०१२) से संकलित

संकलनकर्त्री/लेखिका - साध्वी नवलश्रीजी, दीदी माँ गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा

'गोविन्दलीलामृत' गौड़ेश्वर सम्प्रदाय का प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसमें राधामाधव की अन्तरंगतम श्रृंगारलीलाओं का वर्णन है। 'गोविन्द' शब्द का अर्थ होता है - 'गाः विन्दति इति गोविन्दः' जो गायों की रक्षा करता है, वह है गोविन्द और 'गोपाल' की व्युत्पत्ति है - 'गाः पालयति इति गोपालः' जो गायों का पालन करता है, वह है गोपाल। 'गोविन्दलीलामृत' ग्रन्थ में भगवान् की गौचारणलीला से लेकर के अष्टयाम, अन्तरंग श्रृंगारलीलाओं का भी वर्णन किया गया है, यह दिव्य ग्रन्थ संस्कृत में २३ सर्गों में वर्णित है। प्रारम्भ के सर्गों की ब्रजलीलाओं को ब्रजरसिकों ने भी गाया है।

'गोविन्दलीलामृत' में श्रीकृष्ण यशोदा से आग्रह करते हैं कि माँ ! अब मैं बड़ा हो गया हूँ और अब मुझे तू गौ-चारण की आज्ञा दे दे, तू जो कहेगी वही मैं करूँगा लेकिन गाय चराने जाऊँगा। यशोदाजी मना करती हैं, उन्हें नंदबाबा के पास भेज देती हैं कि जा तू नन्दबाबा से आज्ञा ले आ। नन्दबाबा के पास जाते हैं श्रीकृष्ण और बहुत आग्रह करते हैं।

इस लीला को सूरदासजी ने भी गाया है

"मैया हौं गाय चरावन जइहौं।
बड़ो भयो अब काहू ते न डरइहौं॥"

गौचारण में सहज में गोपियाँ मिलती हैं, श्रृंगार रस का भी पोषण होता है, सख्यरस का भी पोषण होता है, इस तरह से सभी रसों का पोषण होता है।

कुम्भनदासजी श्रृंगार रस के रसिक थे, चतुर्भुजस्वामी कुम्भनदासजी के पुत्र थे। गोस्वामी विट्ठलनाथजी श्रीकृष्ण के अवतार माने जाते हैं। एकबार चतुर्भुजस्वामी ने गोस्वामी विट्ठलनाथजी से ये प्रश्न किया- "जै-जै, ये भेद क्यों है- हमारे पिता कुम्भनदासजी ने भी हमसे कहा कि तू प्रमाणलीला (ब्रजलीला) में क्यों चला गया? प्रमेयलीला (श्रृंगाररस-लीला) में चल।" गुसाईजी ने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया- "दोनों में भेद हो ही नहीं सकता है क्योंकि ठाकुर तो एक ही है। ठाकुर १०-२० नहीं हैं, केवल भावानुसार रुचि-भेद है। रुचि-भेद से अपनी-अपनी लीला की आसक्ति अलग-अलग हो जाती है। तुम्हारे पिता कुम्भनदासजी श्रृंगाररस के उपासक हैं, उनकी रुचि केवल श्रृंगाररस की है। अतः अपनी-अपनी रुचि के भेद से रस का भेद हो जाता है।"

कपिल भगवान् ने भी अपनी माँ को यही उपदेश दिया

भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनी भाव्यते।
स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते॥

(श्रीमद्भागवत ३/२९/७)

"हे माताजी ! भक्ति के चार भेद बताये हैं- सात्विक, राजस, तामस और चौथी गुणातीत (निर्गुणाभक्ति)। अनादिकाल से जीवों के अलग-अलग स्वभाव, गुण, कर्म हैं, इसलिये भावनायें भी अनेक प्रकार की हैं, अतः भाव-भेद से भक्ति में भी विविधता आ गई, इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये।"

हमारे गुरुदेव ६० साल पहले जब चित्रकूट के जंगलों में घूम रहे थे तो सुना था कि वहाँ एक रसिक संत थे जिनके पास एक टूटी-सी कंघी थी। श्रृंगाररस की उपासना के कारण उस कंघी से वह अपनी जटा झाड़ते थे वेणी-गूँथने के भाव से, (सखी भाव से) इस तरह से वह सिद्धि को प्राप्त हुए। इसी प्रकार वृन्दावन में भी रसिक सम्प्रदाय के महापुरुष स्वामी श्री हरिदासजी हुए हैं जिन्होंने केवल श्रृंगार रस की भावना किया और स्वामी हरिदासजी की परंपरा के संत आज भी एक चितकबरा-सा चूनर ओढ़ते हैं। चित्रकूट में जैसे कंघी चली उसी प्रकार हरिदास सम्प्रदाय में टेड़ी-मेढ़ी लकड़ी रखते हैं। स्वामीजी महाराज ने ब्रजलीला भी गाई है, उनका यह पद है - "हमारो दान मार्‌यो इन।" स्वामीजी ने सांकरीखोर

और गहवरवन की भी लीला गाई है। "गोविन्दलीलामृत" में उत्कट श्रृंगार भी है और ब्रज की लीलाओं का भी संयोग है, दोनों रसों को गाया है। श्रृंगार रस में प्राय: परकीया भाव लेकर चलते हैं, परकीया वाले कहते हैं कि जो चीज कठिनाई से मिलती है, उसी में रस है। परकीया रस में छिप के कठिनाई से मिलन होता है, उस मिलन में एक अद्‌भुत रस होता है। महावाणीकार ने भी गाया है **"वृन्दावन सब रस को घर है।"** सभी रस वृन्दावन में हैं।

श्रीकृष्ण को अपने हाथों से पकड़ करके यशोदा मैया सहलाती हैं, समझाती हैं प्रेम से और कहती हैं कि

'शतश: सन्ति ये गोपा: निपुणा: पालने गवां.....।' अरे, गोपाल ! हमारे यहाँ हजारों ग्वालबाल हैं, बड़े चतुर हैं, गौ-पालन में बुद्धि की कुशलता चाहिए कि गाय को क्या आवश्यकता है, कैसी बीमारी है, भूखी-प्यासी तो नहीं है ?

बेटा ! गौचारण अकुशल बुद्धि के लोग नहीं कर सकते हैं, गौ-पालन तो बहुत चतुर लोग कर सकते हैं और तू जिद्द करता है कि मैं स्वयं जाऊँगा गौचारण करने, ये तेरा हठ क्यों है? तू कोई छतरी नहीं रखता है, तेरे पास पादुका भी नहीं हैं, जंगल में जायेगा तो धूप लगेगी और पाँव में कंकड़ चुभेंगे। गायें तो चाहे जहाँ चली जाती हैं - काँटों में चली जायेंगी, कंकड़ों में चली जायेंगी, उनके पीछे तू भी जाएगा, इसलिए मैं तुझे गौचारण करने वन में कैसे भेज दूँ? जंगल में बहुत भय है, कंस के असुर आते हैं और तू अकेले जंगलों में जायेगा तो तेरे बिना हमलोग कैसे जीवित रहेंगे? ऐसा ही हुआ था- जब कालीदह में श्रीकृष्ण कूदे थे तो यशोदा मैया और नंदबाबा यमुना में कूदने जा रहे थे और कह रहे थे कि हम कन्हैया के बिना क्या करेंगे? मैया-बाबा को दाऊजी ने पकड़ लिया क्योंकि वह जानते थे कि ये कृष्ण की लीला है, विनोद है। श्रीकृष्ण तो साक्षात् भगवान् हैं, उनको कालिया क्या मारेगा? लेकिन मैया-बाबा तो जीवन छोड़ने को तैयार हो गए। भगवान् श्रीकृष्ण जैसा गौ-भक्त, गौ-सेवक आज तक नहीं हुआ। जब यशोदाजी ने बहुत आग्रह किया कि तू छतरी लगाकर, पादुका पहनकर जाएगा तो मैं गौचारण की आज्ञा दूँगी। तब कृष्ण बोले- "मैया! तू तो धर्म जानती है कि माँ-बाप कष्ट में हों और बालक सुख से रहे, ये धर्म नहीं है। यदि तू मेरे लिए पादुका लाती है तो लाखों गायें हैं, इनके लिए भी पादुका ला और सब गायों के लिए छतरी ला और प्रत्येक गाय के साथ छतरी पकड़ने वाला एक-एक ग्वालबाल हो तो मैं भी ये सब वस्तुएँ ग्रहण कर लूँगा। (फिर वहाँ श्रीकृष्ण ने अपनी माँ को गौ-पालन धर्म का उपदेश देते हुए कहा) माँ ! तू मेरी बात समझ, तू मेरी माँ जरूर है लेकिन फिर भी सत्य बात तो बेटे की भी माननी चाहिये। कपिल भगवान् ने अपनी माँ को उपदेश दिया था। कपिल मुनि की माँ देवहूति ने अपने बेटे का उपदेश सुना था, इसलिए तू भी सुन।" यशोदा मैया बोली- "अच्छा, तू हमें उपदेश देगा।" कृष्ण बोले- "हाँ, माँ ! मैं तुझको उपदेश दूँगा। तू मेरी बात पहले समझ, गौ-पालन हमारा धर्म है, हमारी तपस्या है। हम लोग छाता और पादुका नहीं ग्रहण करेंगे तभी वह धर्म, धर्म बनेगा।

स्वयं भगवान् ने गीता में कहा है -

यज्ञदानतप:कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

(गीता १८/५)

यज्ञ, दान, तप तीनों का योग है। 'यज्ञ' अर्थात भजन, गौ-सेवा यज्ञ है, दान और तप, इन्हें छोड़ना नहीं चाहिए, इन तीनों को अवश्य करना चाहिए। 'मनीषी' कहते हैं कि सिद्ध पुरुष, जिसकी बुद्धि सदा अपने नियंत्रण में हैं, वह कभी भी गिरता नहीं है, न काम से, न क्रोध से, न लोभ से, न मोह से। उसको मनीषी कहते हैं। भगवान् ने कहा कि कोई इतना बड़ा सिद्ध बन जाये, उसको भी यज्ञ, दान, तप पवित्र कर देते हैं, इनको कभी नहीं छोड़ना चाहिए। (गीता १८/३,५) शास्त्र आज्ञा नहीं देते हैं, चाहे तुम सिद्ध हो, इन तीनों को छोड़ने पर गिर सकते हो। बड़ी-बड़ी ऊँचाइयों पर चढ़के लोग गिर जाते हैं, इसलिए गोपालजी माता यशोदा से बोले- माँ ! मैं तो कभी भी छतरी नहीं लगाऊँगा और चरण-पादुका नहीं पहनूँगा क्योंकि गौ-पालन में तप करना चाहिए। जिस धर्म में तप नहीं है, वह धर्म अधूरा है।"

आज हम लोग क्यों गिर जाते हैं क्योंकि हमारे जीवन में तप नहीं है।

ये तीन (यज्ञ, दान, तप) चीजें मिलकर पूर्ण बनती हैं

ये तीनों बातें रहती हैं तो मनुष्य गिरता नहीं है, एक भी बात घट जायेगी तो गिर जायेगा इसीलिए गीता पढ़ी जाती है।

'यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥' यज्ञ, दान और तप का योग है, जब मनुष्य तप छोड़ देता है तो सुविधावादी ज्यादा बन जाता है। थोड़ा भी कष्ट सहने की हिम्मत नहीं रहती है तो गिर जाता है। उसके अंत:करण में शक्ति नहीं रहती। जैसे – कमजोर आदमी को कोई भी बीमारी गिरा देती है, वैसे ही जो मन का कमजोर है, वह तप नहीं कर सकता, इसीलिये हमारे समाज में विकृतियाँ देखी जाती हैं। हम लोगों में यज्ञ, दान, तप नहीं है, सांसारिक–संग्रह है। इसीलिए श्रीकृष्ण ने गीता में पहले कह दिया कि इन तीनों (यज्ञ, दान, तप) को कभी मत छोड़ो, एक भी छोड़ दोगे तो खतरा है गिरने का।

तुम मनीषी (सिद्ध) हो, बुद्धि तुम्हारे वश में है लेकिन फिर भी तुमको न यज्ञ छोड़ना चाहिए, न दान और न तप। दान छोड़ दोगे तो संसार का कैसे कल्याण होगा ? भक्ति का दान करो, विचारों का दान करो। संतों के पास लोग क्यों जाते है ? संतजन भगवद्–चरित्र का दान करते हैं, संसार में वे सबसे बड़े दानी माने गये हैं। गोपियों ने स्वयं कहा है कि इस संसार में अमृत क्या है ? भगवान् की कथा।

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जना: ॥

(भागवत १०/३१/०९)

यह संसार आग की भट्टी है। इस आग की भट्टी में भी अमृत मिलता है, वह है भगवान् की कथा।

'कवि' माने स्वयंभू ब्रह्मा आदि इस बात को समझते हैं। रामायण के अनुसार महादेवजी कथा सुनने जाते हैं अगस्त ऋषि के आश्रम में, काकभुशुण्डिजी के यहाँ भी महादेवजी कथा सुनने गये। भगवद्–कथा कहीं भी हो, उसे सुनो, ये अमृत है, उस अमृत को पियो। 'कल्मषापहम्' सुनने मात्र से तुम्हारे पाप जल जायेंगे। बहुत सरल रास्ता है पाप को जलाने का, भगवान की कथा सुनो। तुम्हारा मंगल होगा केवल कथा सुनने से ही। प्रश्न है कि कथा कहाँ सुनें ? जो संसार के सबसे बड़े दाता हैं, जो लोग भगवान् की कथा नि:शुल्क देते हैं, वे 'भूरिद' हैं। संसार के सबसे बड़े दाता हैं, उनके पास चले जाओ और वहाँ कथा को सुनो। संसार में ऐसे–ऐसे दाता हैं, जो करोड़ों रुपये थोड़ी देर में फूँक देते हैं, लेकिन वह दान, दान नहीं है। 'भूरिद' माने सबसे बड़ा दान यही है कि भगवद्–चरित्र सुनाया जाए। यह अमृत है, यह बेचने के लिए नहीं है। इसको हम जैसे तुच्छ बुद्धि के लोग कुछ चाँदी के टुकड़े में, कुछ नोटों में बेच देते हैं जबकि यह अमृत नि: शुल्क बाँटने के लिये है। 'भूरिदा जना' कथा–कीर्तन का दान करने वाले सबसे बड़े दाता हैं। इसलिए ब्रजगोपियों ने जो कहा, वही भगवान् ने गीता में उपदेश दिया।

क्रमश...

विरक्त संत
श्री रमेश बाबा महाराज के नित्य
प्रवचन साधना चैनल पर
प्रात: ७:२० से

ब्रज बालिका साध्वी मुरलिका
जी शर्मा द्वारा श्रीमद्भागवत कथा
का नित्य प्रसारण श्रद्धा चैनल पर
शाम ३ से ४ बजे तक

DHAM NISHTHA

A lecture by Shri Ramesh Baba ji Maharaj dt. 5/2/04

I have been ordered by the people living in Dham to speak about Dham. How can I talk about Dham? I fail to do so because I do not understand Dham. Even Brahma Ji cannot describe Dham then how can I do so?

Since it is a formality here in this program I shall speak. I shall share with you the first lesson I learnt when I arrived in Braj. I will have to talk about this incident as it concerns Shri Priya Sharan Das Baba Ji on whose annual celebration you all have organized this program. That day was the point when my relationship with the Dham began. Baba (Shri Priya Sharan Das Baba Ji) had come to Maan Mandir on a stroll around Braj.

In those days, although I did not know much, I used to lecture a lot in places like Jaipur, Alwar etc. During one of those days I had delivered 33 lectures in one day. It was hectic day, running around in a car, people following me everywhere and it lasted till 2AM. In my last lecture, I had answered 12 questions very convincingly and people were listening to me with great interest. Then came the 13th question - How can one realize God? It was a big crowd and suddenly I felt awkward. My tongue stumbled and I could not reply. It wasn't that I felt sick physically. I thought to myself whether I should even be answering this question? Have I personally realized Shri Ji myself? Later, while I was to rest, I asked the owner of the house instead to take me back to Braj. I insisted that if he did not, I shall walk my way back just then. He however, agreed and dropped me to Barsana. There were a lot of followers who wanted my lectures and kept in contact.

We were busy preparing pamphlets for my Lectures when Baba had come to Maan Mandir on a stroll around Braj. He simply questioned me whether I had given up my previous life at such a young age to do all this (creating, maintain contacts) or was it to do Bhajan? I liked his comment and then on started going to his lectures. He then told me that since I had left home for Krishna, it is better that I take the shelter of Dham, be dependent on Dham. This changed my life. I started reading a lot of scriptures on Dham like shataks etc. I snapped all my links (reading or writing letters) with the world outside Dham. I had to face a lot of opposition from my followers.

Today, you are celebrating my Guru Maharaaj, the one who taught me about Dham and I have to speak about Dham. It was only natural for his memories to flow back as he was the one who taught me this lesson.

Bhagwan's naam(names), roop(appearance), dham(abode), leela(past times), goon(attribute) and Jan(pure devotees) are all on the same platform. However, it has been declared by Rasiks that the most simple and easy way to approach Bhagwan is Dham. Even though Naam is very easy, it cannot be chanted 24 hours as one does need to go to sleep. It is not possible to chant Hari Naam during sleep as jeeva is not in such an elevated state. Similarly, neither it is possible to meditate on roop perpetually nor is it possible to continually glorify goon of Bhagwan. Again, it is not possible to sing the glorious leela of Bhagwan all the time, uninterruptedly. It is impossible to serve jan incessantly. Hence, saints clearly advised that one should take shelter of Dham, and be dependent on it. While in Dham, you are there perpetually. When you sleep it's in dham, when you wake up you still are in Dham.

Composer of Shatakars has mentioned hundreds of Shlokas. He has gone to the extent of saying

Dooray Chaitanya Charanah, Kaliravir bhool Mahaan Pratham Krishna Prem Praptiv, bina Vrindavan rajah seveyaah Purport:

All achaaryas have already left. The very air that touched them could deliver a jeeva. Shri Chitanya Mahaprabhu, Shri Vallabhacharya Mahaprabhu, Swami Haridas Ji, Shri Hitharivansh Ji Maharaaj, Mahavaanikaar - Hari Vyas ji are all gone. How can one obtain Krishna Prem now? Shatakars say that the only resort now available is Vrindavan Rajj (dust of Vrindavan), Dham Rajj.

Even in Shiv upaasna - Kaashiyaam marnaam mukti. If you cannot do much, just go and die in Kaashi.

The same is found in Ram upaasna too.

Vandoa Awadhpuri ati paawanee
Sarajoo sari kali kaloosh nasawanee.

These are bare facts. The glories of Dham hold true in all yugas including kaliyuga and even at pralay time. It destroys the vices of Kaliyuga. A live proof is the number of people visiting Dham every

year. In one day of Moodia Poornima in Braj, over 400 thousand people visit Goverdhan, according to newspapers. It will not be wrong to assess that millions visit Goverdhan throughout the year. Similarly, millions come to Vrindavan, Gokul, Barsana (during Holi & Radha astmi), Nandgaon, Daooji, Kamyavan(Kama), Mathura ets. Millions and Millions visit Dham to reap benefits of its potencies. This is a practical proof that Dham is ridding devotees of the vices of Kalyuga. The same hold good for Awadh too.

Pranvaun pur nar naari bahori
Mamta jin par Prabhuji hoee naa thoree.

One should pay obeisance to the people who live in Dham. They have turned into the loved ones of God just by virtue of staying in Dham.

A very special aspect of Dham is that even the most unpardonable / unforgiveable offence turn pardonable by the mercy of Dham. For example- A mere rajak (washer man) had made a great offence towards Bhagwati Sita by commenting that he is no Rama(as Rama had accepted sita ji back) that he will accept his wife back. He was not alone as he had got together an entire community who harbored such opinions. However, all of them were pardoned (of their unforgivable offence) by the mercy of Dham as how a mother pardons millions of offences of her child against herself.

Siya nindak agh ogh nasay
Lok Vishok banay basay

The merciful Dham destroyed the massive wave of offences against Sita Ji by this big group of offenders against Sita Ji. However, all of them were pardoned by Dham. This is the biggest proof of the unimaginable potencies of Dham. All of them stayed in Dham.

Mahjan Sajjan vrinda bahu pawan sarjuni
Jaapay Ram urr dhyan Shyam Shareer
daras paras majjan aru pana .
harai pap kah bed purana
nadi punit amit mahima ati .
kahi n sakai sarad bimalamati

Merely by staying in this dham, one obtains the Nitya dham without even trying for it.

ram dhamada puri suhavani, lok samast bidit ati pavani
chari khani jag jiv apara, avadh taje tanu nahi sansara

If one cannot do much, one can simply go to dham and die there. The glories of dham have even been sung by the Lord himself. Lord Ram glorified Awadh Dham to his beloved associates when he was returning to it from Lanka. He said that although Vaikuntha is on a very high plain and much glorified by ved and puraanas, Awadh is is far superior even though it is just a puri and appears mundane on bhooloka. The same has also been said about Braj:aho madhupuri dhanya vaikunthash-ca gariyasi

Jadyapi sab Vaikunth bakhana ,
Ved Puran bidit jagu jana
Avadhpuri sam priy nahi sou ,
Yah prasang janai kou kou

This concept is beyond grasp to most. Such Shradha, such Nishta. One can turn into a true scholar or even a truly renounced man but such nistha is far too difficult to achieve. Lord Ram himself says that such Nisthaa can be achieved by very few.

Janmabhoomi mam puri suhavani,
Uttar disi bah Sarju pavni.

In this dham, the Lord performs multiple and abundant past times. Even past times of Birth are found here which are not found in the nitya leela.

Ja majjan te binhi prayasa,
mam samip nar pavhi basa
Ati priy mohi ihan ke basi,
mam dhamda puri sukh rasi

By merely staying in Dham, one is blessed with affection from the Lord himself. One becomes his beloved.

One who sees any difference between the Lord and his Naam, Lord and his Dham or Dhaami cannot be considered a devotee, no matter what. Even if one is a highly learned scholar it does not make a difference. He certainly is not a devotee.

Jaa Majjan Te Binahin Prayaasa,
Mam Sameep Nar Paavahin Baasa

One realizes the Lord just by dint of Living in Dham. To bathe and live in dham shall get one to the Lord without even making an effort. This is one of foremost aspects of dham. This has also been declared by the Rasiks of Braj. It is a universal sidhaant (truth). One achieves perfection in dham. It is a simple solution to realize God. This belief is important when one arrives in Dham, stays in Dham. When one has no astha (belief), one still realizes God but the time duration gets much extended. One surely realizes God, be it this birth or a later one. Even the one without Astha shall receive pure satsung some day, though it might be billions of years later or billions of Kalpas later. There are several proofs to this statement and I shall talk about them later. This is important for people like us who are living in Dham.

Translation by : Shri Raviji Moga, New Delhi

❑❑❑